हैं पर धीर साधक प्रत्यगात्मा में ध्रुव अमृतत्व-परब्रह्म श्रीरामजी को अनुभव कर इस जगत में अध्रुव-क्षणिक वस्तु की याचना नहीं करते ॥२॥

अल्पज्ञाः स्वकीयमनर्थमपि विज्ञातुं न प्रभवन्त्यतो विषयेष्वासक्ता भवन्ति धीमन्तस्तु तथा नेति वदति- पराच इति । **ये बाला अर्थानर्थविवेचकबुद्धिविहीनास्ते पराचो बाह्यान् कामान् कामनाविषयभूतान् स्त्रक्चन्दनवनितादीननुयन्ति तानेव हितकृतोविज्ञाय तेषु सज्जन्ते, अतो विततस्य विस्तृतस्य मृत्योर्जन्ममरणादिरूपस्य संसारस्य पाशं बन्धनं यन्ति प्राप्नुवन्ति । अथ मृत्युपाशाद् विलक्षणमित्यर्थो यदमृतत्वं मुक्तिमपुनरावृत्तिलक्षणं ध्रुवं निश्चितं विदित्वा विज्ञाय धीरा विवेकिनोऽध्रुवेषु विनश्वरेषु कामेष्विह संसारचक्रे संभविषु कमपि कामं न प्रार्थयन्ते न कामयन्ते प्रत्युत तत्तत् सर्वकामनानिवृतेस्तेषु लुब्धा न भवन्तीत्याशयः ॥२॥**

अल्प बुद्धिवाला जीव अपने अनर्थ को भी नहीं समझता है इसलिये वे लोग विषयरूपादिक में आसक्त होते हैं परन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति विषय में आकृष्ट नहीं होते हैं इस बात को श्रुति कहती है-**'पराचः'** इत्यादि । जो व्यक्ति अनर्थ तथा अर्थ के विवेचन करनेवाली बुद्धि से रहित हैं एतादृश बालक लोग । बाह्य जो काम अर्थात् कामना विषय स्त्रक् चन्दन बनितादिक का ग्रहण

करते हैं। उन बाह्य विषय बनिता धनादिक को ही उपकारी समझ करके उनमें आसक्त होते हैं। वे लोग वितत विस्तृत मृत्यु का जन्ममरणादिरूप संसार के पाश को अर्थात् बन्धन को प्राप्त करते हैं। और धीर कुशल व्यक्ति मृत्यु के पाश से विलक्षण अत्यन्त भिन्न अमृतत्व मोक्ष को जो कि अपुनरावृत्ति लक्षण है उसे ध्रुव निश्चित जान करके अध्रुव विनश्वर संसारचक्र में होने वाले किसी कमनीय पदार्थों की कामना नहीं करते हैं प्रत्युत सर्वकाम से निवृत्त होकर उन कमनीय पदार्थों में लोभ नहीं करते हैं ॥२॥

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्। एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते-एतद्वै तत् ॥३॥

जिस आत्मतत्त्व द्वारा ही सभी रूप समस्त रस सब गन्ध शब्दों तथा स्पर्शों को एवं सांसारिक स्त्री आदि सुखों को पूर्णतया जानता है तब क्या शेष रहता है अर्थात् कुछ नहीं अतः वह नचिकेता से पूछा गया प्राप्य परब्रह्म श्रीराम तत्त्व जो पूर्व मन्त्रों से वर्णित हुआ है वही है ॥३॥

येन 'तद्देवाः ज्योतिषां ज्योतिः' 'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनोयत्' इत्यादिश्रुत्युक्तदिशा सर्वप्रकाशकेनेत्यर्थः, एतेनैव प्रत्यगात्मभूतेनैव परमेश्वरेण सर्वोऽपि लोको रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शान् मैथुनान्

मिथुनप्रयुक्तान् सुखविशेषानुपलक्ष्यमिदमन्यवस्तूनामपि तेन सर्वाञ्ज्ञेयान्-पदार्थान् परमात्मनैव प्रकाशितान् लोकः पश्यतीत्यर्थः । अत्र परमात्मनि प्रकाशके प्रकाशनाय समुद्यते किमप्रकाशितं परिशिष्यते । न किमप्यप्रकाशितं तिष्ठतीत्यर्थः । एतद्वै प्रत्यगात्मस्वरूपमेव तत् पूर्वं नचिकेतसान्यत्र धर्मादित्यादिना यत्पृष्टं-तद्विष्णोः परमं पदमित्यादिना च यत्प्रत्युक्तं तदित्यर्थः। दुर्विज्ञेयस्वभावतया तस्यार्थस्य पुनस्तदेव विविच्यत इतिभावः ।।३।।

'येनरूपमित्यादि' जिस 'तद्देवाः' 'श्रोत्रस्य श्रोत्रम्' इत्यादि श्रुति प्रतिपादित प्रकार से सर्वप्रकाशक परमात्मा से । इसी प्रत्यगात्मभूत परमपुरुष से सब लोग प्रत्येक प्राणीरूप को रस को गन्ध को तथा स्पर्शों को तथा मैथुन अर्थात् मिथुन प्रयुक्त सुखविशेष को जानता है । यह उपलक्षण है रूपादिक सकल वस्तुओं का । अतः सभी ज्ञेय पदार्थ को जो कि परमात्मा से प्रकाशित है उसी को सभी लोग देखते हैं । यहां सर्वप्रकाशक परमात्मा जब पदार्थ मात्र के प्रकाशन करने के लिये विद्यमान हैं तब अप्रकाशित कौन पदार्थ परिशेषित बाकी रह सकता है, अर्थात् कोई भी पदार्थ अप्रकाशित नहीं रहता है । 'एतद्वैतदिति' यह प्रत्यगात्मस्वरूप ही वह है

जिस वस्तु को पूर्व में नचिकेता ने **'अन्यत्र धर्मात्'** इत्यादि प्रकरण से पूछा था। और **'तद्विष्णोः परम् पदम्'** इत्याद्रि प्रकरण से पुष्ट किया था वह यही है। ज्ञेय पदार्थ को अतिदुर्विज्ञेय स्वभावक होने से उस विषय का पुनः पुनः विवेचन करते हैं ॥३॥

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥४॥

स्वप्नकाल में अनुभूत एवं जाग्रत दशा में दिखाई देनेवाले दोनों ही विषयों को जिस अन्तर्यामी के द्वारा जीववर्ग देखता है उस अन्तरात्मा को महान् यानी सभी पदार्थों से अतिश्रेष्ठ एवं सर्वव्यापक अनुभव कर धीर पुरुष शोक नहीं करता है ॥४॥

स्वप्नान्तं स्वप्नमध्यस्थं स्वप्नकालीनमिति यावत्। जागरितान्तं जाग्रद्दशामध्यस्थं जाग्रत्कालीनञ्चोभौ स्वाप्नजाग्रत्कालीनार्थौ येन सर्वप्रकाशकेन परमात्मनैव साधनेन लोकोऽनुपश्यति तं महान्तं सर्वान्तरात्मभूतं विभुं व्यापिनमात्मानं परमेश्वरं मत्त्वा साक्षात्कारविषयतां नीत्वा धीरो बुद्धिमान्न शोचति शोकस्य पारं गच्छतीत्यर्थः। इन्द्रियसत्वेऽपि परमात्मैव लौकिकार्थज्ञानस्यापि मुख्यं साधनमितिभावः ॥४॥

'स्वप्नान्तमित्यादि' स्वप्नान्त स्वप्नमध्यस्थित

अर्थात् स्वप्नकालिक पदार्थ को तथा जागरितान्त जाग्रत्कालिक पदार्थ इन दोनों स्वप्नकालिक जाग्रत कालिक पदार्थों को जिस स्वप्रकाशरूप परमात्मा रूप साधन के द्वारा लोग जानते हैं तादृश महान् सर्वभूतों का अन्तरात्मरूप विभु व्यापक आत्मा परमेश्वर श्रीरामजी को साक्षात्कार करके बुद्धिमान् व्यक्ति शोक नहीं करता है अर्थात् शोक पदवाच्य संसार सागर को पार कर जाता है। चक्षुरादिक इन्द्रियों का सद्भाव होने पर भी परमात्मा ही सर्वपदार्थ विषयक ज्ञान के उत्पादन करने में मुख्य साधन हैं ॥४॥

य इदं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् । ईशानं भूतभव्यस्य ततो न विजुगुप्सते एतद्वै तत् ॥५॥

जो साधक पुरुष इस स्वकर्म फलों का भोक्ता जीवात्मा और जीव के निकटस्थ होकर भूतकाल भविष्यकाल एवं वर्तमानकाल का नियन्त्रण करनेवाले परमात्मतत्व को जान जाता है उसके अनन्तर किसी की भी निन्दा नहीं करता है। नचिकेता से जिज्ञासित परतत्त्व इन्हीं मन्त्रों से प्रतिपादित तत्त्व है ॥५॥

य उपासको मधु कर्मफलं मधुवन् मधुरतयाऽऽपाततः प्रतीयमानत्वात् तदत्ति भुङ्क्त इति मध्वदस्तं कर्म फलभोक्तारमिदमित्यत्र लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः । इम

मित्यर्थः । जीवं जीवात्मानं भूतभव्यस्यातीतकालीन वर्तमानकालीनस्योपलक्षणविधया भविष्यत्कालीनस्य च सर्वस्य चिदचिद्वस्तुन ईशानं नियन्तारं परमात्मानञ्च वेद सम्यग्विजानाति स जनस्ततस्तमित्यर्थः । कश्चि दपि न विजुगुप्सते न निन्दतीत्यर्थः । आत्मपरमात्मो भयज्ञानवन्तं न कोऽपि निन्दति । तस्य सर्वपूज्यत्व प्रत्यभिज्ञानादितिभावः । यद्वा ततस्तदनन्तरमात्मपर मात्मज्ञानप्राप्त्यनन्तरमिति यावत् । स उभयज्ञाता जनो न विजुगुप्सते कमपि न निन्दति । यतः स सर्व मप्येकात्मकं विजानातीत्यर्थः । एतदेतन्मन्त्रप्रतिपाद्यमेव तत्पूर्वोक्तं विष्णोः परमपदमित्यर्थः पूर्ववत् ॥५॥

'य इदमित्यादि' जो उपासक मधु-कर्म फल को मधु के समान मधुर रूपसे आपाततः प्रतीयमान कर्मफल का भोग करता है कर्मफल भोक्ता को । **'इदम्'** यहां व्यत्तय छान्दस है इदम् इममित्यर्थः जीव जीवात्मा को जानता है । तथा **'अन्तिकात्'** समीपस्थित को अर्थात् हृदय गुहारूप एक देश में भव्य वर्तमान कालिक उपल क्षणतया भविष्यत् कालिक सभी चिदचित्पदार्थ के ईशान नियन्ता परमात्मा को समीचीन रूपसे जानता है । एता दृश .व्यक्ति किसी की भी निन्दा नहीं करता है । जीव परेश ज्ञानवान् की निन्दा कोई नहीं करता है वह सर्व

पूज्य होता है । यद्वा ततः उसके बाद अर्थात् आत्म परमात्म ज्ञान के अनन्तर में । वह तादृश ज्ञातापुरुष किसी की भी निन्दा नहीं करता है क्योंकि वह सब पदार्थ को एक आत्मरूप से जानता है । यही इस मन्त्र से प्रतिपाद्य सर्वव्यापक विष्णु श्रीरामजी का परम पद है ॥५॥

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत एतद्वै तत् ॥६॥

जो हिरण्यगर्भ पानी आदि की सृष्टि से पूर्व उत्पन्न हुआ था तथा तप से पहले उत्पन्न हुआ और सभी भूतवर्गों के हृदयरूप गुफा में प्रवेश करके स्थिर रहते हुये भूत देहरूप देहादि से संपृक्त संसार का सर्जक हो जाय ऐसा स्वरूप जो प्राप्य के रूपमें निर्दिष्ट है वही तत्त्व इस मन्त्र से प्रतिपादित पदार्थ है ॥६॥

यो हिरण्यगर्भः पूर्वं व्यष्टिसृष्टेः प्रागद्भ्यो जलेभ्य उपादानभूतेभ्योऽजायत उत्पन्नः 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' इत्यादिश्रुतेः 'अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् । तमण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ तस्मिन् जातः स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः' इति स्मृतेश्च । तं तपसः परमपुरुषसंकल्परूपात्, 'यस्य ज्ञानमयं तपः इतिश्रुतेः, पूर्वं जातं सर्वलोकपितामहं हिरण्यगर्भं गुहां व्यष्टिसृष्टिहृदयकुहरं प्रविश्य तिष्ठन्तं वर्तमानं सर्वव्यष्टिश

रीरव्यापकमित्येतद् । भूतेभिर्भूतैः शरीरेन्द्रियरूपकार्य कारणसंघातैर्विशिष्टं यः परमात्मा व्यपश्यत पश्यति, हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानमितिश्रुतेरयं व्यष्टिरूपसकलप्रपञ्चकर्ताभवत्विंत्येवं रूपेण पश्यतीत्यर्थः । एतदेषः परमात्मैव तत्पूर्वपृष्टं परमप्राप्यस्वरूपमित्यर्थः।६।

'यः पूर्वमित्यादि' जो हिरण्यगर्भ व्यष्टि सृष्टि के पूर्वकाल में उपादान कारणीभूत जल से उत्पन्न हुए । 'व्यष्टि सृष्टि के पूर्वकाल में हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए' इत्यादि श्रुत्यन्तर से भी यह सिद्ध होता है । तथा 'प्रजा की उत्पत्ति करने की इच्छा वाला स्वयंभू ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया । उस जल में बीज का आरोपण किया । 'सहस्रसूर्यों की किरण के समान सुवर्णमय एक अण्डा पैदा हुआ, उस अण्डे में सर्वलोक के जनयिता प्रथम जीव ब्रह्माजी स्वयं उत्पन्न हुए । इसप्रकार स्मृतियों में भी कहा है । वह हिरण्यगर्भ तप से परम पुरुष के संकल्पात्मक तप से 'जिसका ज्ञानमय ही तप है' ऐसा श्रुत्यन्तर में प्रसिद्ध है । सर्वप्रथम समुत्पन्न सर्व लोक के पितामह हिरण्यगर्भ गुहा में व्यष्टि सृष्टि हृदय कुहर में प्रविष्ट होकर के विद्यमान अर्थात् सर्व व्यष्टि शरीर व्यापक । तथा भूतों से अर्थात् शरीरेन्द्रियरूप कार्य कारण समुदाय से विशिष्ट हिरण्यगर्भ को जो

परमात्मा देखते हैं । 'समुत्पन्न हिरण्यगर्भ को देखते हैं' अर्थात् यह हिरण्यगर्भ व्यष्टिरूप सकलप्रपञ्च के कर्ता हों। इसप्रकार से परमात्मा उसे देखते हैं' इसप्रकार श्रुत्यन्तर में कहा है । वह यह परमात्मा ही पहले जो पूछा गया था वही परम प्राप्य स्वरूप है ॥६॥

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी । गुहां प्रविश्यतिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत, एतद्वै-तत् ॥७॥

जो इन्द्रियों से नियन्त्रित स्वकृत कर्म परिणाम का भोक्ता जीव प्राण के साथ ही रहता है एवं जो हृदयकमलरूपी गुफा में प्रवेश कर रहते हुये पृथिवी प्रभृति पांच भूतों के साथ अनेक रूपों से उत्पन्न होता है वही इस श्रुति से प्रतिपादित जीव स्वरूप जो है वह ब्रह्मात्मक है ॥७॥

अत्ति कर्मफलानि भुङ्क्त इत्यदितिः कर्मफल भोक्ता जीवो देवतामयी देवैरधिष्ठितत्वाद् देवता इन्द्रि याणि तत्प्रचुरतया देवतामयीन्द्रियाधीनकर्तृत्वभोक्तृत्वा दिमतीत्यर्थः, प्राणेन संभवति प्राणवायुना सह तिष्ठ ति । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती हृदयगुहान्तरे वर्तमाना, भूतेभिः पृथिव्यादिभूतैः शरीराकारपरिणतैर्युक्ता, व्य जायत देवमनुष्यादिरूपविविधाकाररूपेणाजायत जा-ता, स्वरूपतो जीवस्य नित्यत्वेऽपि कायाकारपरिणत भूतविशिष्टतया जन्मात्र प्रोक्तमितिभावः । यतः परम

पुरुषतत्वाद् देवादिरूपेण जीवस्य भवनं तदेतत्पर मात्मतत्वं तत्पूर्वोक्तं परमप्राप्यस्वरूपमेवेत्यर्थः । यद्वा एतदेतन्मन्त्रप्रतिपाद्यजीवस्वरूपमपि तत्पूर्वोक्तपरम-प्राप्यब्रह्मात्मकमेवेत्यर्थः । 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धीत्या दावपि क्षेत्रज्ञस्य मदात्मकत्वकथनात् । ब्रह्मजज्ञशब्द वाच्यजीवस्य ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यमित्यस्य देवात्मकत्वो क्तेश्चेतिभावः ।।७।।

'या प्राणेनेत्यादि' कर्मफल को जो खाये उसे कहते हैं अदिति (अत्ति कर्मफलानिभुंक्ते' इत्यदि तिरितिव्युत्पत्तेः) कर्मफल के भोक्ता जीव देवतामयी है । देवताओं से अधिष्ठित होने के कारण देवतामयी वहां देवता का अर्थ है इन्द्रियवर्ग तत्प्रचुर होने से देवतामयी अर्थात् इन्द्रियाधीन कर्तृत्व भोक्तृत्वादिमती । **प्राणेन संभवतीति** प्राणवायु के साथ रहती है । **'गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीति'** हृदयरूप गुहा के मध्य में वर्तमान तथा जो पृथिव्यादिक भूतों के साथ शरीराकार परिणत भूतों से युक्त हो करके उत्पन्न हुई । अर्थात् स्वरूपतो यद्यपि जीव नित्य है इसलिये इसका प्रादुर्भाव नहीं होता है तथापि शरीराकार परिणत भूतों से युक्त होने के कारण जन्म का व्यवहार होता है । जिसलिये परमपुरुष तत्व से देवादि रूपसे जीव का जो होना है यही वह परमात्म

तत्व है वही पूर्वकथित परमप्राप्य स्वरूप है। यद्वा एतत् मन्त्र प्रतिपाद्य जीवस्वरूप भी पूर्वोक्त परमप्राप्य ब्रह्मस्वरूप ही है। 'क्षेत्रज्ञ भी हम को जानो' इत्यादि स्थल में क्षेत्रज्ञ जीव को भी परमात्म स्वरूपता का प्रति पादन किया गया है। तथा महत् शब्द वाच्य जीव को **'ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यम्'** आदि से देवात्मकत्व का प्रतिपादन किया गया है ॥७॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः। दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः। एतद्वैतत् ॥८॥

स गर्भा स्त्रियों से यत्नपूर्वक पोषित गर्भ के समान नियत रूपसे सजग हवनीय द्रव्य प्रदान में संलग्न मनुष्यों से रोज रोज स्तुति करने योग्य जातवेदा यानी स्वयं सिद्ध ज्ञानवाले अग्निदेव उत्तर अरणी तथा अधर अरणी के बीच में स्थित है। इस श्रुति से प्रतिपादित अग्नि स्वरूप ही वह पहले प्रतिपादित ब्रह्मात्मक तत्त्व है ॥८॥

परमपुरुषप्राप्तिसाधनतयां प्रथममुक्तो नाचिकेताग्निस्तस्यापि ब्रह्मात्मकत्वमुपदिशति-अधियज्ञं जातवेदा अग्निररण्योरुत्तराधरारण्योर्मध्ये निहितः स्थितोऽस्ति योऽग्निर्गर्भिणीभिरन्तर्वर्तिनीभिर्गर्भ इव सुभृतो ऋत्विग्भिरितिशेषः। यथाऽशनपानादिभिर्गर्भिणीभिर्गर्भः सुष्ठु भृतः पालितो भवति तथैवाधियज्ञ

मग्निर्याज्ञिकैः पालितो भवति तन्निर्वाणे दोषश्रवणात् । दिवे दिवे प्रतिदिनञ्जागृवद्भिर्जागरूकैः प्रमादरहितैरित्येतद् । हविष्मद्भिराज्यादिहविर्युक्तैर्मनुष्येभिर्मनुष्यैर्याज्ञिकविप्रैरित्यर्थः । ईड्यः स्तोतुमर्होऽग्निरग्रमुत्कृष्टं लोकं नयति प्रापयति यजमानमित्यग्निरग्रनेता । एतन्मन्त्रप्रतिपादितमग्निस्वरूपमपि तदात्मकं पूर्वोक्तपरब्रह्मात्मकमेवेत्यर्थः ॥८॥

'अरण्योरित्यादि' परमपुरुष परमात्मा की प्राप्ति में साधनरूप से पूर्व में नाचिकेताग्नि का कथन किया है। उस नाचिकेता अग्नि में ब्रह्मस्वरूपता का उपदेश देते हैं अर्थात् नाचिकेत अग्नि भी ब्रह्मरूप ही है। **'अरण्योर्निहितः'** इत्यादि। यज्ञसंबद्ध जो जातवेदा अग्नि जिसप्रकार उत्तराधर अरणी में यज्ञीय काष्ठ में निहित स्थित रहता है। गर्भिणी स्त्री से जिस तरह गर्भ सुभृत धारित रहता है, इस तरह ऋत्विकों से जो अग्नि सुभृत है। अर्थात् भोजन पानादि द्वारा गर्भिणी से गर्भपालित होता है उसी तरह यज्ञ सम्बन्धी अग्नि याज्ञिकों से पालित होती है क्योंकि अग्निहोत्रीय अग्नि के बुझ जाने पर प्रायश्चित्त का उपदेश शास्त्र प्रतिपादित है। यह अग्नि **दिवे दिवे** प्रतिदिन जागरूक प्रमाद रहित हविर्युक्त मनुष्यों से अर्थात् याज्ञिक ब्राह्मणों से यह अग्नि स्तुति

के योग्य है। एतादृश अग्नि यजमान को उत्कृष्ट लोक को प्राप्ति कराता है। 'एतद्वैतदिति' इस मन्त्र में प्रतिपादित जो अग्नि है वह भी पूर्वोक्त ब्रह्मरूप ही है ॥८॥

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति । तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् ॥९॥

जिस सर्वेश्वर श्रीरामजी से सूर्य उदित होता है एवं जिस परब्रह्म श्रीरामजी में अस्त होता है सभी ब्रह्म आदि देवता उसी परब्रह्म में प्रतिष्ठित हैं उस सभी के आत्मारूप परब्रह्म को कोई भी जीव कभी भी उल्लंघन नहीं कर सकता है। श्रुतिओं द्वारा प्राप्य के रूपमें वर्णित वेही परब्रह्म श्रीरामजी का सर्वोत्तम स्थान है इस श्रुति से प्रतिपादित परब्रह्म तत्त्व भी वही है ॥९॥

यतः परस्माद् ब्रह्मणः सूर्य उदेति प्रकाशते, यत्र च परमात्मनि सूर्योऽस्तं गच्छति निम्लोचनं याति । देवा अग्नीन्दुवरुणादयः सर्वेऽपि तं परमात्मानमर्पिता अरा इव रथनाभौ तत्रैव स्थितिं गताः । प्रतिष्ठिता इत्येतत् । कश्चन कश्चिदपि पदार्थस्तत्परं ब्रह्म नात्येति उनातिक्रामत्येव तदुल्लंघ्य स्वतन्त्रतया न किमपि वर्तत इत्यर्थः । एतन्मन्त्रप्रतिपाद्यपरमात्मस्वरूपमेव तत्पूर्वोक्त परमप्राप्यमित्यर्थः ॥९॥

'**यतश्चोदेतीति**' जिस परब्रह्म से यह सूर्य उदित होता है, प्रकाशित होता है। और जिस परमात्मा में

सर्वप्रकाशक सूर्य अस्तमित होता है । उसी परमात्मा में सभी अग्नि वरुणादिक देव अर्पित हैं अर्थात् उसी परमात्मा श्रीरामजी में स्थित हैं । जिस तरह रथ के नाभि में अरा प्रतिष्ठित रहता है । कोई भी पदार्थ उस ब्रह्म को अतिक्रमण नहीं करता है अर्थात् उस परमात्मा को उल्लंघन करके कोई भी पदार्थ नहीं रहता है इस मन्त्र से प्रतिपाद्य सर्वेश्वर श्रीरामजी का स्वरूप ही वह पूर्वोक्त परमप्राप्य तत्त्व है अन्य नहीं ॥९॥

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥१०॥

जो परमब्रह्म तत्त्व इस संसार में है वही परमब्रह्म तत्त्व श्रीराम जी परलोक में भी हैं एवं जो परब्रह्मतत्त्व परलोक में है वही परब्रह्मतत्त्व इस संसार में भी है । जो साधक जीव उस परब्रह्म में अनेक जैसा यानी दोनों में भेद का अनुभव करता है वह मानव मृत्यु यानी जन्म एवं मरण रूप संसार से मृत्यु अर्थात् वार-वार जन्म मृत्यु परम्परा को ही प्राप्त करता है ॥१०॥

एवं यन्मन्त्रत्रयेण जीवानामग्नेः सूर्यादिदेवानाञ्च ब्रह्मात्मकत्वं प्रतिपादितं तत्रेह लोके स्थितानां जीवानां ब्रह्मादीनाञ्च य आत्मा स एव परलोकगतादित्यादीनां कथमात्मा संभवति, इहाहमस्मि, अमुत्रदेवाः सन्तीत्येवं विभिन्नदेशकालवर्तिष्वात्मतया परमात्मन एकस्यासंभवित्वादित्यतो विभिन्नदेशकालवर्तिष्वात्मतया सत्वमस्य

व्यापकस्य नित्यस्य नासंभवमितिदर्शयितुमाह-यदेवेहेति । इहास्मिन् लोकेऽहमित्यनुसन्धीयमानानां देवादीनामात्मभूतं तदेव परमात्मतत्वम् । एतदेव द्रढयितुमाह-यदमुत्र तदन्विह । अमुत्र परलोकोऽहमित्यनुसन्धीयमानदेवादीनामात्मभूतं यत्परमात्मतत्वमिह लोकेऽहमाकारप्रत्ययगोचरजीवानामात्मभूतं तदनु तदेव परमात्मतत्त्वमित्यर्थः । सर्वात्मभूतपरमात्मतत्वे भिन्नता नास्तीतिभावः । एवमवर्तमानमपि परमात्मभेदं यो मन्यते स संसारसमुद्रे मज्जतीत्याह-यो लोक इह परमात्मनि नानेव नानात्वमिव भेदमिवेति यावत् । पश्यति जानाति मन्यत इत्येतत् । स परमात्मभेददर्शी मृत्योर्मरणात् पश्चादपि मृत्युं मरणं प्राप्नोति पौनः पुन्येन संसारं प्रविशति । इवशब्देन परमात्मतत्वस्य वस्तुतो नानात्वं नास्तीतिद्योत्यते ॥१०॥

इसप्रकार जो तीन मन्त्रों से जीव अग्नि तथा सूर्यादि देवों को ब्रह्मात्मकत्व का प्रतिपादन किया गया है। वहां इस लोक में स्थित जीवों का तथा ब्रह्म की जो आत्मा वही परलोकगत आदित्यादि देवों की आत्मा किस तरह हो सकती है। क्योंकि मैं इस लोक में हूँ, वे परलोक में रहते हैं इसप्रकार विभिन्न देश स्थिततया प्रतीयमान उनमें आत्मस्वरूप से एक परमात्मा को

संभवित नहीं है। अतः विभिन्न देश तथा विभिन्नकाल में स्थित अनेक में भी नित्य सर्वव्यापक परमात्मा का अवस्थान असंभवित नहीं है। इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं-'**यदेवेहतदमुत्रेत्यादि**' इस परिदृश्यमान भू लोक में '**अहम्**' मैं हूँ। इसप्रकार अनुसंधीयमान जीव समुदाय का आत्मभूत जो परमात्म श्रीराम तत्व है वही परमात्मतत्व परलोक स्वर्गादिक में भी '**अहम्**' मैं हूँ, इसप्रकार अनुसंधीयमान देव प्रभृति का भी आत्मरूप वही परमात्म श्रीराम तत्व है। इस विषय को दृढ करने के लिये कहते हैं-'**यदमुत्रतदन्विह**' इति। अमुत्र अर्थात् परलोक में अहम् इसरूप से अनुसंधीयमान देव प्रभृति के आत्मभूत जो परमात्म तत्व है इसलोक में भी अहमाकारक प्रत्यय गोचर जीव का भी आत्मभूत तदनु- अर्थात् वही परमात्म तत्व है। अर्थात् सबका आत्मभूत परमात्म तत्व में भेद नहीं है। इस तरह वस्तुतः परमात्मा श्रीराम तत्त्व में भेंद नहीं है तथापि परमात्म तत्व में जो भेद को मानता है वह पुरुष संसार समुद्र में डूबता है इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं- '**मृत्योः स मृत्युमित्यादि**' जो व्यक्ति इस परमात्मा में नानात्व भेद के समान देखता है जानता है वह परमात्म भेद दर्शी पुरुष मृत्यु मरण के पश्चात् भी मृत्यु मरण को

प्राप्त करता है । अर्थात् बारं-वार संसार में प्रवेश करता है । वह कथमपि मोक्षगामी नहीं होता है ॥१०॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ११

वह महान् परब्रह्म श्रीराम तत्त्व विशुद्ध अन्तःकरण से ही प्राप्त करने योग्य या किया जा सकता है । उस परब्रह्म श्रीरामजी में नाना यानी विविध या अनेकपना कुछ भी नहीं है तो भी जो पुरुष उस ब्रह्मतत्त्व में अनेक के समान देखता है वह नाना रूपसे देखने वाला साधक मृत्यु से मृत्यु को यानी वार-वार जन्म तथा मरण को प्राप्त करता है ॥११॥

परमात्मनः सर्वात्मत्वे सर्वैरनुभूयमानता जीवात्मवत् तस्यापि स्यादित्यत आह-मनसैवेदमिति । **इदं सर्वात्मभूतं परमात्मतत्त्वं मनसैव फलामभिसंध्या न रहित क्रियमाणकर्मभिर्यस्य मनो विशुद्धं कामक्रोधरागद्वेषादिशून्यत्वाद्भवति तेन पुंसा तादृशमनसैव परिज्ञेयं नान्यतोऽतो नास्माभिः सर्वैरनुभूयमानता तस्य भवतीतिभावः । इह परमात्मस्वरूपे किञ्चन नाना नास्ति नानात्वं भेदः कश्चिदपि नास्ति । तथाप्यविशुद्धमना योऽसदपि नानात्वं तत्र पश्यति स मृत्योर्मृत्युमाप्नोति । जन्ममरणचक्रे पतितस्तिष्ठतीत्यर्थः ॥११॥**

यदि परमात्मा देवादि साधारण जीव मात्र का आत्मस्वरूप है तब तो जिस तरह जीवात्मा सर्वानुभव

वेद्य है उसी तरह परमात्मा को भी सर्वानुभव वेद्यत्व होना चाहिये परन्तु परमात्मा तो किसी के भी अनुभव का विषय नहीं होते हैं इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**मनसैवेदमित्यादि**' यह सर्वात्मभूत परमात्म तत्त्व मन से अर्थात् फलाभिसंधान रहित बुद्धि से क्रियमाण जो कर्म अग्निहोत्रादिक तादृश कर्म द्वारा कामक्रोधादि रहित हो जाने से मन अत्यन्त विशुद्ध पवित्र हो गया है मन जिसका एतादृश पुरुष से यथोक्त मनके द्वारा परमात्मा को जानना चाहिये। इसलिये हमलोग उस परमात्मा का तादृश अनुभव नहीं कर सकते हैं अर्थात् अशुद्धान्तः करण पुरुष के साक्षात्कार का विषय परमात्मा श्रीराम[illegible] नहीं होते हैं। इस परमात्म स्वरूप में किसी भी प्रकार का थोडा भी भेद नहीं है। तथापि अशुद्धान्तःकरण वाला व्यक्ति [illegible] भेद को देखता है तो वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है [illegible]र्थात् वारंवार संसार चक्र में गिरता है ॥११॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्ये आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य ततो न विजुगुप्सते ॥१२॥

उपासक जीव के आत्मा के मध्य हृदय में उपास्य परब्रह्मतत्त्व श्रीरामजी अंगुष्ठ-अंगूठे के माप समान स्थित रहते हैं। वे ही भूतकाल भविष्यकाल एवं वर्तमानकाल वर्ती सभी का नियन्त्रक हैं चराचर स[illegible]भी

का नियामक और वात्सल्य आदि अनन्त गुण वाले होने से उनकी सभी पर समान दृष्टि है अतः किसी की जुगुप्सा-निन्दा नहीं करते हैं। उस सभी के प्राप्य रूपसे निर्दिष्ट श्रीरामजी का सर्वोत्तम पद है प्रकृत श्रुति से प्रतिपादित परमात्म धामरूप स्थान वही है ॥१२॥

यः पुरुषः परमात्मा मध्य आत्मन्युपासकशरीरे हृदयपृण्डरीक उपासकमनुग्रहीतुमंगुष्ठमात्रोऽङ्गुष्ठपरिमाणः सन् तिष्ठति वर्तते स भूतभव्यस्य कालत्रयवर्तिसमस्तचिदचित्पदार्थस्येशानो नियामकः सन्नस्तीति शेषः। सः परमपुरुष उपासके वात्सल्यात् ततो देहमध्यस्थेभ्यो दोषेभ्यो न विजुगुप्सते। जुगुप्सां न प्राप्नोति। वात्सल्येनेतरेऽपि जना मलिनमपि स्वपुत्रादिस्वगेहादि वा न त्यजन्ति तत्र तेषां जुगुप्साया अभावात्। एतद् वै एतन्मन्त्रप्रतिपाद्यपरमात्मतत्वमेव पूर्वं प्रतिपादितं विष्णोः परमम्पदमित्यर्थः ॥१२॥

'अंगुष्ठमात्रः' इत्यादि। जो पुरुष परमात्मा आत्मा के मध्य में उपासक के शरीरान्तर्वर्ती हृदय पुण्डरीक में उपासक को अनुगृहीत करने के लिये अंगुष्ठमात्र परिमाणवान् हो करके परमात्मा पुरुष निवास करते हैं। वह परमात्मा भूत भव्य का अर्थात् कालत्रयवर्ती समस्त चिदचित्पदार्थ का ईशान नियन्ता हो करके विद्यमान रहते हैं। वह परमपुरुष परमात्मा उपासक के प्रति वात्सल्य से उपासक के देह स्थित दोषों से विजुगुप्सा को प्राप्त

नहीं करते हैं। इतर भी व्यक्ति वत्सलता के कारण मलिन भी पुत्रादिक में अथवा स्वकीय गेहादिक में घृणा करके उसका परित्याग नहीं करता है क्योंकि उसमें उनको जुगुप्सा-घृणा नहीं होती है। (घृणा का अभाव रहता है) 'एतद्वैतदिति' इस मन्त्र से प्रतिपादित जो परमात्म श्रीरामतत्त्व है वही पूर्व में 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इस प्रकरण से प्रतिपादित हुआ है ॥१२॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः। ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स एव श्वः, एतद्वैतत् ॥१३॥

अंगुष्ठ समान परिमाण का परमपुरुष धुए बिना का प्रकाश के सदृश है वह भूत भविष्य एवं वर्तमान तीनों काल के चेतनादि वर्ग का नियन्त्रक है। वही परब्रह्म श्रीराम आज है तो वही परपुरुष कल भी रहेगा। उन पूर्व मन्त्रों से प्रदर्शित परब्रह्म श्रीरामजी ही प्रकृत मन्त्र से प्रतिपादित हैं ॥१३॥

अधूमको धूमरहितमित्यर्थः। छांन्दसं पुल्लिङ्गत्वम्। ज्योतिस्तेजोधातुरिव शुष्केन्धनप्रदीप्यमानवह्निरिव सदा प्रकाशमानः पुरुषः परमात्माङ्गुष्ठमात्रोऽङ्गुष्ठपरिमाणः सन्नुपासकशरीरगतहृत्कमलमध्यवर्ती सन् भूतभव्यस्य कालत्रयवर्तिचिदचित्पदार्थस्येशिता स एवाद्य वर्तमाने‌ऽपि स एव श्वो भविष्यत्कालेऽपि स एव नि-

यन्तेत्यर्थः । उपलक्षणमेतदतीतकालस्यापि । अथवा, अद्य एतत्कालीनचिदचिद्वस्तु श्वो भविष्यत्कालीनचिदचिद्वस्तूपलक्षणतोऽतीतकालीनचिदचिद्वस्तु च स एव । तदात्मकमेव सर्वमित्यर्थः । एतद्वैतदेतन्मन्त्रप्रतिपाद्यं सर्वनियन्तुः परमात्मतत्त्वमेव तत्पूर्वोक्तविष्णोः पदमित्यर्थः ॥१३॥

'अंगुष्ठमात्रः' इत्यादि । अधूमक धूमरहित धूमरहित जैसा हो वैसा यहां अधूमक के क्रिया विशेषण होने से नपुंसक ही होना चाहिये । परन्तु छान्दस प्रयोग होने के कारण पुल्लिंग का प्रयोग किया गया है । ज्योति तेजो धातु के समान । शुष्क इन्धन सूखी हुई लकडी से प्रदीप्त वह्नि के समान अतिशयेन प्रकाशमान वह परमात्मा पुरुष अंगुष्ठमात्र परिमाणवान् होते हुए भूत भव्य कालत्रयवर्ती चिदचित्पदार्थ समुदाय का ईशान नियन्ता वही है आज वर्तमानकाल में तथा वही श्वः भविष्यत् काल में भी नियन्ता है । यह अद्य श्व शब्द भूत का भी उपलक्षक है । अथवा अद्य-एतत् कालवृत्ति चिदचिद्वस्तु श्वः भविष्यत् कालिक जो चिदचित्पदार्थ उपलक्षणत्वात् भूतकालिक चिदचिद्वस्तु भी वह परमात्मा ही हैं अर्थात् कालत्रयवर्ती पदार्थमात्र परमात्मस्वरूप ही है । एतत्मन्त्र प्रतिपाद्य नियन्ता परमात्मा श्रीरामजी ही पूर्वोक्त विष्णु

का पद है ॥१३॥

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति १४

जैसे दुर्ग-दुर्गम पहाड पर वरसा हुआ पानी पर्वत के भिन्न भिन्न स्थानों पर फैल जाता है उसी प्रकार से परब्रह्म में स्थित धर्मों को यानी मनुष्यों के अन्तर्यामी या देवों के अन्तर्यामी आदि को परब्रह्म श्रीरामजी से अलग आधार पर हैं ऐसा देखने वाला साधक नियत रूपसे उनका ही अनुधावन करता है यानी अनेक योनियों में घुमता रहता है शीघ्र मुक्ति सम्भव नहीं है ॥१४॥

दुर्गे-दुर्गमे, उच्छ्रिते शिखरप्रदेशे वृष्टं सिक्तमुदकं जलं पर्वतेषु शिखरापेक्षया निम्नप्रदेशेषु पर्वतेषु प्रत्यन्तपर्वतेषु यथा विधावति विशीर्यविविधरूपेण पतति निर्झरनदीप्रभृतिरूपेणाधोगच्छतीति यावत् । एवं तथा धर्मानात्मसम्बन्धिनः सर्वान्तरत्वसर्वान्तरयामित्वसर्वप्रकारत्वसर्वात्मत्वादीन् पृथग् भिन्नभिन्नदेवाद्यधिकरणगतान् पश्यन् विजानन् तानेव यद्यद्धर्मविशिष्टाधिकरणगतान् पश्यति तानेव धर्मान् देवत्वमनुष्यत्वादीननुदुर्गवृष्टोदकमनुकृत्य विधावति तेषु तेषु देवमनुष्यादियोनिषु गच्छति पुनः पुनः संसारगर्तं प्रविशतीत्यर्थः ॥१४॥

'**यथोदकमित्यादि**' जिसप्रकार दुर्ग दुर्गम अर्थात् अत्युन्नत शिखर प्रदेश में सींचा हुआ उदक वर्षा का

जल पर्वतों में शिखर की अपेक्षा से निम्नप्रदेश पर्वत में विशीर्ण हो करके अनेक रूप हो करके गिरता है। अर्थात् झरना नदी नाला रूप से नीचे नीचे को जाता है। इसी तरह आत्म सम्बन्धी सर्वान्तरत्व सर्वान्तर्यामित्व सर्वप्रकारत्व सर्वात्मत्वादि धर्मों को पृथक् पृथक् भिन्न भिन्न देवादिक अधिकरण में विद्यमान धर्मों को जानता हुआ उसी को यत् यत् धर्म विशिष्टाधिकरण में स्थित धर्म को देखता है उसी देवत्व मनुष्यत्वादिक धर्म को दुर्ग में वृष्टोदक के समान तत्तत् देव मनुष्यादि योनि में जाता है अर्थात् बारंबार संसारगर्त में प्रवेश करता है १४

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुने विजानत आत्मा भवति गौतम ॥१५॥

गौतम हे नचिकेता ? जैसे शुद्ध जल में मिश्रित शुद्ध-निर्मल जल उस जल के समान ही हो जाता है उसी प्रकार से परब्रह्म श्रीराम तत्त्व के ज्ञाता श्रीरामतत्त्व साधनापरायण साधक की आत्मा परब्रह्म के ज्ञानं से परब्रह्म के सदृश होती है ॥१५॥

卐 लघुदीपिकायां द्वितीयाऽध्यायस्ये प्रथमावल्ली 卐

शुद्धे निर्मले जले आसिक्तं योजितं शुद्धं जलं यथा तादृगेव भवत्यधिकरणीभूतशुद्धजलसदृशमेव न ततो विपरीताकारमेवं शुद्धजलमिव विजानतो मनन शीलस्याऽत्माऽपि विशुद्धे परमात्मन्यासिक्तो नियोजित

इत्येतत् । परमात्मज्ञानेन विशुद्धो भूत्वा विशुद्धेन परमात्मना समानाकारो भवत्यपहतपाप्मत्वादिगुणाविर्भावतः तत्सदृशो भवति । हे गौतम हे नचिकेतः सम्बोधनमेतच्छिष्ये कृपां हर्षं वा द्योतयितुमुक्तम् ।१५।

卐 इति भगवद्रामानन्दाचार्यविरचिते कठोपनिषद आनन्दभाष्ये
द्वितीयाध्यायस्य प्रथमा वल्ली ॥१।२॥ 卐

'यथोदकमित्यादि' हे गौतम ? शुद्ध-निर्मल जल में आसिच्य मान शुद्ध जल वैसा ही होता है अर्थात् अधिकरणीभूत जो शुद्ध जल तादृश शुद्ध जल का स्वरूप ही होता है किन्तु उससे विपरीत अशुद्ध नहीं होता है । इसी तरह शुद्ध जल के समान मननशील साधक की आत्मा भी विशुद्ध अतिनिर्मल परमात्मा श्रीराम जी में नियोजित हो करके अर्थात् परमात्म ज्ञान से वि शुद्ध होकर के विशुद्ध परमात्मा का समानाकारक हो जाता है अर्थात् अपहत पाप्मत्वादि गुणों के आविर्भाव हो जाने से परमात्मा श्रीरामजी के सदृश ही वह साधक जीव भी हो जाता है । हे गौतम नचिकेता यह सम्बोधन कृपा अथवा अत्यन्त हर्ष का द्योतन करने के लिये किया गया है ॥१५॥

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
श्ररामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्यप्रकाशे
द्वितीयाध्यायस्य प्रथमावल्ली



卐 अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वितीया वल्ली 卐

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्चविमुच्यते एतद्वैतत्-१

जन्म तथा मृत्यु प्रभृति से रहित सरल बुद्धि वाले जीव के ग्यारह द्वार वाला पुर–शरीर है स्वकर्म प्राप्त इस शरीर के होते ही सर्वेश्वर श्रीरामजी की आराधना कर अन्त काल में शोच नहीं करता है एवं सांसारिक बन्धनों से छूट जाता है तथा प्रारब्ध आदि कर्मों के अन्त हो जाने पर सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर सदा के लिये निर्भय हो जाता है। प्रकृत श्रुति से प्रतिपादित वह तत्त्व ब्रह्मात्मक तत्त्व ही है ॥१॥

पुरसाम्याच्छरीरमपि पुरमित्युच्यते । पुरे हि द्वाराणि यथेच्छसंख्यानि पुरनिर्मात्रा विहितानि शरीरेऽप्येकादशद्वाराणि तत्रास्यभवानि द्वाराणि सप्त चक्षुद्वयं श्रोत्रद्वयं नासाद्वयं मुखञ्चैकमिति नाभिर्गुदोपस्थौ चेत्येवं त्रीण्यधोद्वाराणि । मूर्धागतञ्चैकमिति भवन्त्येकादश-छिद्ररूपाणि द्वाराणि । द्वारेषु द्वारपाला अपि पुरे नियुक्ता भवन्ति तेऽत्र चक्षुरादीन्द्रियाण्येव तेषामधिपतयोऽपि भवन्ति तेऽत्र चक्षुराद्यधिष्ठातृदेवता आदित्यादयः सन्ति । प्राकारास्तत्र भवन्ति तेऽत्र त्वङ्मांसरुधिरमज्जामेदोस्थिस्नायव एव सप्त सन्ति । अतः पुरोपकरणदर्शनात् पुरमिदं शरीरम् । पुरस्वामी तु जीवो येन परमात्मना स्वामित्वे न नियुक्तः स

परमात्मा अजो जन्ममरणादिविकारशून्यः पुरस्वामिनो जीवस्य कर्मसम्बन्धेन शरीरद्वारा जन्मादिमत्त्वेऽपि न परमात्मनस्तथा कर्मसम्बन्धाभावात् । एवं स पर मात्मा अवक्रचेतांश्चेतोऽत्र ज्ञानं तद्वक्रं भवति कर्म कृतसंकोचाद् यथा जीवस्य, कर्माभावेन तु तत्कृत संकोचो न कदापि परमात्मज्ञानेऽतोऽजस्यावक्रचेतसः परमात्मनः कृते पुरमेतदनुष्ठाय सव्यापारं शरीरमिदं भगवदर्थं विधाय न शोचति अभयप्राप्त्या शोका वसराभावाद् । विमुक्तो रागद्वेषादिभिः शोकमूलभूतैरि हैव रहितस्सन् प्रारब्धावसानसमये प्रकृतिसम्बन्धतो वि मच्यते सर्वबन्धविनिर्मुक्तो भवतीत्यर्थः । एतदेव पुर स्वामितया जीवस्य नियोजयितृस्वरूपमेव तत् पूर्वोक्तं विष्णोः परमं पदमित्यर्थः । यद्वा पुरस्वामी राजा यथा भिन्नो भवति तथा शरीराच्छरीरस्वामी जीवो विल क्षण एवेत्यनुष्ठाय विविच्य ज्ञात्वा न शोचति वि मुक्तश्च विमुच्यते प्राग्वदेवार्थः । कीदृशस्य पुरस्वा मिनः पुरमित्यत्राह–अजस्यावक्रचेतसो जन्मादिविकार रहितस्य अकुटिलबुद्धेर्विवेकवत इत्यर्थः । शरीरात्मा भिमानं परित्यज्य रागद्वेषादिरहितः सन् सर्वप्रकृति सम्बन्धविमोक्षद्वारा शोकरहितो भवतीतिभावः । अत्र पक्ष एतद्वैतदित्यस्यैतन्मुक्तात्मस्वरूपं तदेव पर-

मात्मात्मकमेवेत्यर्थः ॥१॥

'पुरमित्यादि' पुर नाम है नगर का तादृश नगर के समानरूप होने से यह प्रकृति निर्मित सुख दुःखादि भोग का अधिष्ठान यह जीव शरीर भी पुर कहलाता है। नगर में पुर को बनाने वाला व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार चार छ आठ दश द्वार बनाता है। इस शरीर में भी एकादश द्वार हैं। उसमें मुख में सात द्वार है। दो आँख दो कान दो नासिका और एक मुख ये सब मिल करके सात द्वार होते हैं। नाभि गुदा और उपस्थ ये तीन अधोदेश के द्वार हैं और मस्तक में एक। इसप्रकार एकादश छिद्ररूप एकादश द्वार होते हैं। नगर के द्वार में द्वारपाल भी नियुक्त होते हैं। वे द्वारपाल शरीर के द्वार में चक्षुरादिक इन्द्रिय ही हैं। और उनके अधिपति भी होते हैं। वे यहां चक्षुरादिक के अधिष्ठातृ देवता आदित्यादिक हैं। नगर में प्राकार परकोटे होते हैं। यहां परकोटे के स्थानापन्न त्वचा मांस रुधिर मज्जा मेद अस्थि और स्नायु सात हैं। अतः पुर नगर का जो उपकरण उन सब उपकरणों को देखने से यह शरीर भी पुर है। नगरात्म पुर में राजा स्वामी होता है और इस शरीरपुर में जीव ही पुर स्वामी है। यह जीव जिस परमात्मा के द्वारा स्वामी रूपसे नियुक्त किया गया है।

वह परमात्मा अज है अर्थात् जन्म मरणादि विकार से रहित है। पुर स्वामी जीव को शुभाशुभ कर्म का सम्बन्ध होने से शरीर द्वारा जन्म मरणादि का सम्बन्ध होने पर भी परमात्मा को कर्म का सम्बन्ध नहीं है। एवं वह परमात्मा अवक्र ज्ञानवान् है। वह ज्ञान कुटिल होता है जिसमें शुभाशुभ कर्म द्वारा संकोच हो जिस तरह जीव का ज्ञान और परमात्मा में कर्म का अभाव होने से कभी भी कर्मकृत संकोच नहीं होता है। इस लिये अवक्रचेतस है। उस अवक्रचेतस परमात्मा के लिये इस शरीररूप पुर को अधिष्ठित करके अर्थात् व्यापार सहित इस शरीर को भगवान् के लिये करके। एतादृश पुरुष शोक नहीं करता है अर्थात् अभय प्राप्ति होने से शोक का अवसर नहीं रहता है। और शोक का कारण रागद्वेष से रहित हो करके प्रारब्ध कर्म के भोग के अवसान काल में प्राकृतिक बन्धन के जाल से विमुक्त हो जाता है। अर्थात् जीव को पुरस्वामी रूपसे नियुक्त करने वाले परमात्मा ही पूर्वकथित विष्णु का परम पद है।

अथवा जिस तरह पुरस्वामी राजा नगर से भिन्न है इसी तरह इस शरीर का स्वामी जीव इस शरीररूप पुर से भिन्न अर्थात् जन्ममरणादि धर्मक शरीर से सर्वथा

विलक्षण है एतादृश जीव को जाननेवाला पुरुष प्रकृति बन्धन से छूट करके संसार सागर को अतिक्रमण कर जाता है। कीदृश पुरस्वामी जीव का यह शरीर रूप पुर है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**अजस्यावक्रचेतसः**' इति। जन्ममरणादि विकार से रहित अकुटिल बुद्धि विवेकवान् का शरीर में आत्माभिमान को छोड करके रागद्वेष से रहित होता हुआ सर्वप्राकृतिक सम्बन्ध के विमोक्ष द्वारा सर्वथा शोक रहित हो जाता है। इस अथवा पक्ष में-'**एतद्वैतत्**' इसका यह अर्थ है यह मुक्तात्मस्वरूप जो है वह परमात्मात्मक रूप ही है, यह अर्थ होता है ॥१॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥२॥

ऋतुओं में भ्रमणशील शुचि सूर्य अन्तरिक्ष का निवासी वायु यज्ञवेदी में संस्थापित अग्नि घर में आये अतिथि सभी मानव में स्थित मानवों से उत्तम देवों में स्थित सत्य लोक में स्थित परम व्योम में स्थित एवं जल से पैदा होनेवाले पृथिवी से उत्पन्न होनेवाले और यज्ञ से पैदा होनेवाले पर्वत से उत्पन्न होनेवाले समस्त पदार्थ परिमाणरहित बृहद् सत्यस्वरूप ब्रह्मात्मक ही है ॥२॥

चिदचिदात्मकसर्वपदार्थस्य परब्रह्मात्मकत्वं प्रति

पादयितुमाह-हंस इत्यादि । शुचौ निर्लेपत्वात् पवित्र आकाशे सीदतीति शुचिषदादित्यात्मना आकाशे वर्तमानो हंसो हन्ति गच्छतीति व्युत्पत्त्या सूर्यः । अन्तरिक्ष आकाशस्यैकदेशविशेषे सीदति वर्तते इति अन्तरिक्षसत् । वासयति सर्वानिति वसुर्वायुः । वेद्यां सीदतीति वेदिषद् वेद्युपरिवर्तमानो होता ऋत्विगग्निर्वा तस्यापि वेद्यां वर्त्तमानत्वाद् वेदिरत्र पृथिवी विवक्षिता अग्निर्वै होता इयं वेदिः परोन्तः पृथिव्या इतिश्रुतेः । अतिथिः सोमो दुरोणसद् दुरोणेषु कलशेषु सीदतीति दुरोणसत् । यद्वा दुरोणे गृहेसीदतीति व्युत्पत्या गृहं प्रतिसमागतो ब्राह्मणोऽतिथिः । नृषद् नृषु मनुष्येषु सीदतीति नृषत् मनुष्ययोनौ वर्तमान इत्यर्थः । वरसद् वरेषु देवेषु सीदतीति वरसद् देवयोनौ विद्यमानः । ऋतसदृते सत्यलोके तिष्ठतीति ऋतसत् सत्यलोके वर्तमानः । यद्वा ऋते यज्ञे सीदति वर्तमान इति ऋतसद् यजमान इत्यर्थः । व्योम्नि परमाकाशे परमपदे सीदतीति व्योमसत् परमपदस्थो मुक्तात्मेत्यर्थः । अप्सु जाता अब्जा जलोत्पन्नाः शंखमीनमकरादयः । गोजा गवि पृथिव्यां जाता गोजा भूम्यामुत्पन्ना ब्रीहियवादयस्तरुलतौषधिप्रभृतयश्च । ऋते आकाशे जाताश्चिरस्थिततयाऽऽकाशस्यापि सत्यपर्यायकऋतशब्दवाच्यत्वात् । यद्वा

ऋताद् यज्ञाज्जाता यज्ञोत्पन्नाः तत्फलभूतस्वर्गादिलोकस्था ऋतजाः । अद्रिभ्यः पर्वतेभ्यो जाता अद्रिजा नदीप्रभृतयः । सर्वमेवैतद् बृहदपरिच्छिन्नं महदित्येतत् । यदुक्तं सत्यं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेतिश्रुतेः । तदात्मकमित्यर्थः । हंसमारभ्याद्रिजपर्यन्तं यद्यत् प्रदर्शितमिह तस्य सर्वस्याप्यात्मा परं ब्रह्मेतिभावः । एतेन सर्वपुरवर्तित्वमस्य प्रतिपादितं भवति ॥२॥

चिदचित् चेतन जडात्मक समस्त पदार्थ परमात्मस्वरूप है इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं- '**हंसः**' इत्यादि । शुचि अर्थात् पार्थिवादिक सकल मल रहित होने से पवित्रतम आकाश में जो रहे उसे शुचिषत् कहते हैं अर्थात् आदित्य रूप से आकाश में वर्तमान । **हंसः** चले जो उसे हंस कहते हैं अर्थात् सूर्य । अन्तरिक्षसत् अन्तरिक्ष में अर्थात् आकाश के एक देश विशेष में जो रहे उसे अन्तरिक्ष सत् कहते हैं । वसु अपने में सबको वसावे जो उसे वसु कहते हैं अर्थात् वायु । वेदिषदिति वेदी में जो रहे उसे वेदिषत् कहते हैं वेदी के ऊपर रहनेवाले होता ऋत्विक् अथवा अग्नि, ऋत्विक् तथा अग्नि वेदी पर वर्तमान होता है । यहां वेदी शब्द से पृथिवी विवक्षित है-'**अग्निर्होता इयं वेदिः परोन्तपृथिव्याः**' इस श्रुति से सिद्ध होता है कि वेदी शब्द का

अर्थ है पृथिवी। अतिथि सोमरस दुरोण कलश में वर्तमान। अथवा दुरोण घर में जो रहे दुरोणसत् कहते है अर्थात् गृह में आया हुआ ब्राह्मण अतिथि। नृषदिति मनुष्य में जो रहे अर्थात् मनुष्य योनि में वर्तमान हो उसे नृषत् कहते हैं। वरसत् वरों में देवों में जो रहे अर्थात् देवयोनि में वर्तमान वरसत् कहते हैं। ऋतसत् ऋत सत्यलोक में जो रहे उसे ऋतसत् कहते हैं अर्थात् सत्यलोक में वर्तमान। अथवा ऋतयज्ञ में जो रहे उसे ऋतसत् कहते हैं। व्योम सत् व्योम में परमाकाश परमपद में जो रहे उसे व्योमसत् कहते हैं परमपद में विद्यमान मुक्तात्मा। अब्जा अप जल में जो हो शंख शुक्ति मकर मत्स्यादिक को अब्जा कहते हैं। गोजा-गोपृथिवी से जायमान जो हो उसे गोजा अर्थात् ब्रीहि यव तरु लता ओषधि प्रभृतिक पार्थिव पदार्थ। ऋतजाः ऋत आकाश में जायमान चिरकाल स्थित होने से आकाश को भी सत्य का पर्याय ऋत शब्द वाच्यता है। अथवा ऋत से अर्थात् यज्ञ से जायमान यज्ञ से उत्पन्न यज्ञ के फल स्वरूप जो स्वर्गलोक उसमें निवास करनेवाले '**अद्रिजा**' अद्रि पर्वतों से जायमान नदी प्रभृति को अद्रिजा कहते हैं। ये सब बृहत् हैं अप रिच्छिन्न महान् हैं। जो ऋत सत्य है ब्रह्म है-'सत्य ज्ञान

अनन्त ब्रह्म हैं' ऐसा श्रुत्यन्तर में भी प्रतिपादन किया गया है। तादृश ब्रह्मात्मक ये सब पदार्थ हैं। हंस से लेकर अद्रिजा पर्यन्त जिन जिनका प्रदर्शन किया गया है उन सब की आत्मा परब्रह्म हैं। इससे परमात्मा श्रीराम जी में सर्व पुरवर्तित्व का प्रतिपादन किया गया ॥२॥

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयति अपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ॥३॥

अन्तर्यामी परमात्मा प्राण वायु को ऊपर ले जाता है एवं अपान वायु को नीचे धकेल देता है। हृदय कमल के मध्य में स्थित सभी जनों से उपासना योग्य सर्वेश्वर श्रीरामजी की समस्त देव सत्वगुण सम्पन्न जन आराधना करते हैं ॥३॥

यः सर्वहृदयदेशवर्ती परमात्मा प्राणं प्राणवायु मूर्ध्वप्रदेशमुन्नयति प्रापयति । अपानमपानवायुं प्रत्यग धोमुखमस्यति क्षिपति । मध्येहृदयकमलमध्ये आसीनं वर्तमानं वामनं हार्दाकाशपरिमाणतया ह्रस्वपरिमाण म्। यद्वा वामनं भजनीयं तं परमात्मानं सर्वे देवा उपासते भजन्ति । देवा इतिसत्वप्रकृतिमतामुपलक्षणं तेन सत्वप्रकृतयः सर्वेऽपि जीवा देवमनुष्यादयस्तमुपा सत इत्यर्थः ॥३॥

'**ऊर्ध्वमित्यादि**' प्राणीमात्र के हृदय देश में निवास करनेवाले जो परमात्मा हैं वह प्राण को अर्थात् प्राण

वायु को ऊर्ध्व प्रदेश को प्राप्त कराते हैं। और अपान वायु को नीच प्रदेश में अधोमुख को प्राप्त कराते हैं। एतादृश हृदय कमल के मध्य में वर्तमान परमात्मा को जो कि वामन हृदयाकाश के परिमाण से ह्रस्व परिमाण वान् वामन है। यद्वा वामन सबसे उपासनीय परमात्मा हैं उस परमात्मा की सब देवगण उपासना करते हैं। यहां 'देवा' यह पद सत्व प्रकृति जीव का उपलक्षक है। अतः सत्व प्रकृति वाले प्रत्येक देवता मनुष्य सब उपासना करते हैं ॥३॥

अस्य विस्त्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः। देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते। एतद्वैतत् ॥४॥

इस ब्रह्मोपासना परायण ज़ीव के शरीर में स्थित भिन्न भिन्न देह में गमनशील जीवात्मा के देह से निकल जाने पर यहां क्या शेष रह जाता है अर्थात् कृत कर्मा होने से बांकी कुछ नहीं रहता। प्रकृत श्रुति से प्रतिपादित तत्त्व भी ब्रह्मात्मक श्रीरामात्मक ही है ॥४॥

एवं पूर्वमन्त्रोक्तरीत्या हृदयकमलस्थं प्राणापानादि गतिव्यवस्थापकं परमात्मानं यः सत्वप्रकृतिः समुपास्ते तस्यास्य समुपासकस्योपासनाद्वारा कृतपरमपुरुषसा क्षात्कारस्य शरीरस्थस्य देहिनो जीवस्य किमत्र परि शिष्यते कर्तव्यमितिशेषः। न किमपि करणीयं तस्य

तिष्ठतीत्यर्थः । देहिन इत्यस्यैव विशेषणं शरीरस्थस्येति विस्त्रंसमानस्येति च देहिनो देहे द्विविधास्थितिर्दृढतया शिथिलतया च । यौवन आद्या वार्द्धकेतु शिथिला । देहस्य दृढत्वशैथिल्याभ्यां जीवस्य स्थितौ दृढत्वशै थिल्ये कल्प्येते कृतब्रह्मसाक्षात्कारो हि दार्ढ्येन शैथिल्येन वा तिष्ठतु शरीरे किं तेन अनवशिष्टकरणी यत्वात् तस्येतिभावः । एतावदेव न किन्तु स म्रियते चेत्तथापि नो हानिरित्याह–देहाद्विमुच्यमानस्य स यदि मरणोन्मुखो भवति तदापि न कर्तव्यं किमपि तस्याव शिष्टमितिभावः । एतद्वैतदेतन्मन्त्रप्रतिपाद्यं कर्तव्यावशे षरहितात्मस्वरूपमपि तदात्मकमेव पूर्वोक्तपरमपुरुषात्म कमेवेत्यर्थः ॥४॥

'अस्येत्यादि' इसप्रकार पूर्व मन्त्रोक्त रीति से हृदय कमल के मध्य में विराजमान प्राणापानादि वायु की गति का व्यवस्थापक परमात्मा परमपुरुष को जो सत्व प्रकृतिक उपासक उपासना करता है उस इस उपासक को उपासना द्वारा करलिया है परमपुरुष का साक्षात्कार जिसने एतादृश तथा शरीर में स्थित देही जीव को यहां कौनसा कर्तव्य कार्य अवशिष्ट रह जाता है अर्थात् परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर तादृश परमेश्वर सा क्षात्कार कर्ता जीव को कोई भी कर्तव्य अवशिष्ट

(बांकी) नहीं रहता है। कुछ भी करणीय कार्य नहीं रहता है। '**देहिनः**' इसी का विशेषण है '**शरीरस्थस्य**' यह पद तथा '**विस्त्रंसमानस्य**' इति। इस देही जीव की इस शरीर में दो प्रकार की स्थिति होती है। एक तो दृढा स्थिति तथा दूसरी शिथिला स्थिति। उसमें युवावस्था में दृढतया अवस्थिति रहती है और वृद्धा वस्था में शिथिला स्थिति रहती है। देह की दृढता तथा शिथिलता से जीव की दृढता तथा शिथिलता की कल्पना की जाती है। नतु स्वतः जीव में दृढता अथवा शिथिलता है। जिसने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है वह दृढतापूर्वक यद्वा शिथिलता पूर्वक भले शरीर में निवास करता रहे इससे क्या क्योंकि उसे अब कोई भी करणीय कार्य अवशिष्ट नहीं रह गया है। इतना ही नहीं किन्तु वह मर भी जाय तो कोई क्षति नहीं है, इस आशय से कहते हैं-'**देहाद् विमुच्यमानस्येति**' कृत ब्रह्मसाक्षात्कार व्यक्ति यदि मरणोन्मुख भी होता है उस समय में भी उसे कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता है। '**एतद्वैतत्**' इति। इस मन्त्र से प्रतिपादित कर्तव्य पदार्थ का अवशेष रहित आत्मस्वरूप भी तदात्मक ही है अर्थात् पूर्वोक्त परमपुरुष श्रीरामात्मक ही है ॥४॥

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।

इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ।।५।।

मरणशील कोई भी मानव प्राण वायु या अपान वायु से जीता नहीं है परन्तु दूसरे से जीवित रहते हैं जिस आत्म तत्त्व में ये अपान एवं प्राण वायु दोनों ही आश्रित हैं ।।५।।

प्राणिनां जीवनं प्राणाधीनमितिलोके प्रसिद्धं तन्न युक्तं किन्तु परमात्मैव तु जीवनकारणमिति वदति–न प्राणेनेति । **कश्चन मर्त्यः कोऽपि मरणधर्मा जीवः प्राणेन प्राणवायुना जीवतीति न, यद्यपि प्राणवायुसंगमो देहेन जीवनहेतुरितिप्रसिद्धं तथापि नैतद्युक्तमित्यर्थः । तथा अपानेन अपानवायुना न कश्चिन् मर्त्यो जीवति केन तर्हि जीवत्यत्राह**–इतरेण तु जीवन्ति **इतरेण प्राणापानव्यतिरिक्तेन केनचिज्जीवनहेतुना सर्वे मर्त्या जीवन्ति । स क इत्यत्राह**–यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ **एतौ प्राणापानौ लोके जीवनहेतुतया प्रसिद्धावपि यस्मिन् सर्वात्मभूते परमपुरुषे उपाश्रितौ स्वजीवनाय यमाश्रितवन्तौ यत्संकल्पेन प्राणापानौ स्वस्वव्यापारकरणसमर्थौ भवतः । यदधीनमेव प्राणापानजीवनमितियावत् । स परमपुरुषः श्रीराम एँव मर्तव्यानामपि जीवनहेतुरिति भावः ।।५।।**

प्राणियों का जीवन प्राण के अधीन है इसप्रकार लोक में **वायुरेवप्राणः** प्रसिद्धि है परन्तु वह ठीक नहीं है

किन्तु परमात्मा परमपुरुष श्रीरामजी ही प्राणी के जीवन का कारण हैं इस बात को बतलाते हैं-प्रकृत मन्त्र से- **'न प्राणेन नापानेन'** इत्यादि । कोई भी मरणधर्मा जीव प्राण से अर्थात् प्राणवायु के द्वारा जींवित नहीं होता है । यद्यपि प्राणवायु का जो देह के साथ सम्बन्ध है वही जीवन का कारण है ऐसी प्रसिद्धि है तथापि यह विषय ठीक नहीं है । एवं न अपानवायु के द्वारा कोई जीव जीवित रहता है। यदि प्राणापान से जीवित नहीं होता है तो किससे यह जीव जीवित रहता है इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**'इतरेण तु'** इत्यादि । इतर से अर्थात् प्राण अपान व्यतिरिक्त किसी जीवन के कारण से ये सब मर्त्य जीवित रहते हैं । जिससे जीव जीवित होता है वह कौन है इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं- **'यस्मिन्नेतावित्यादि'** ये दोनों प्राणापान जो कि लोक में जीवन के कारणरूप से प्रसिद्ध होते हुएभी जिस सर्वात्मभूत परमपुरुष श्रीराम में उपाश्रित हैं स्वजीवन स्वकीय व्यापार करने के लिये जिस परमपुरुष का आश्रय लिया है । अर्थात् जिसके संकल्प से प्राणापान स्वकीय स्वकीय व्यापार करने में सर्वथा समर्थ होते हैं । जिसके अधीन में प्राणापान का जीवन है वह सर्वेश्वर मर्यादापुरुषोत्तम भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही

मर्त्यमात्र के जीवन के कारण हैं किन्तु तदतिरिक्त कोई भी कारण नहीं है ॥५॥

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथात्र मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ।६।

हे गोतम वंश में उत्पन्न नचिकेता ? तत्त्वजिज्ञासु तुम्हे पाकर मैं प्रसन्न हूँ अतः अति गुह्य-गोपनीय सनातन परब्रह्म तत्त्व एवं जीवात्मा मृत्यु को प्राप्तकर जैसे रहता है इस तत्त्व को तत्त्व जिज्ञासु तुझसा शिष्य को पाकर पुनः कहता हूँ ॥६॥

हन्तेत्यव्ययं हर्षद्योतकम् । हर्षश्चाधिकारसम्पन्न शिष्यलाभात् । हृष्टो मृत्युः पूर्वोक्तमपि परमात्मस्वरूपं विशेषेण वक्तुं प्रतिजानाति दुर्विज्ञेयत्वादस्य वस्तुनः शिष्यस्य चाधिकारिविशेषेण कृपापात्रत्वात् । यथास्य सम्यग् बोधो भवेत् तथा स्वयमेव विवक्षा मृत्योर्जातेतिभावः । ते तुभ्यं नचिकेतसे कामनारहिताय शिष्यायाधिकारिणे इदं मद्बुद्धिस्थं यत्पूर्वं मयोपदिष्टं गुह्यमतिरहस्यं सनातनं सदाभवं पुराणं ब्रह्म प्रवक्ष्यामि प्रकर्षेण वक्ष्याम्युपदेक्ष्यामि यथा सुखेनावबोधस्ते भवेदित्यर्थः । हे गौतम मरणं मृत्युं देहवियोगं प्राप्य लब्ध्वात्मा जीवो यथा भवति परमात्मज्ञानाभावाद् यां यां योनिं प्रपद्यते तदपि च प्रवक्ष्यामीत्यर्थः । गौतमेति सम्बोधनेन तदुपरि महती कृपा द्योत्यते ॥६॥

'**हन्त त**' इत्यादि । हन्त यह अव्यय शब्द है, हर्ष विशेष का द्योतक है । अधिकारी विशेष की प्राप्ति होने के कारण अर्थात् अधिकार सम्पन्न शिष्य के लाभ होने से । अत्यन्त प्रसन्न यमराज पूर्व में कथित भी परमात्म स्वरूप का विशेष रूपसे कथन करने के लिये प्रतिज्ञा करते हैं क्योंकि परमात्मस्वरूप अत्यन्त दुर्विज्ञेय है और शिष्य विलक्षण अधिकारी है इसलिये वह शिष्य कृपा का पात्र है । जिस प्रकार इस शिष्य को यथावत् आत्मज्ञान हो तादृश कहने की इच्छा स्वयमेव यमराज को हुई । तुम नचिकेता को जो कि कामनाओं से रहित हो अधिकारी विशेष शिष्य हो उसके लिये । यह मेरी बुद्धि का विषय जिसका पहले मैंने उपदेश दिया है गुह्य अति रहस्य सनातन सर्वदा स्थायी पुराण ब्रह्म का कथन विशेष रूपसे करता हूँ, जिससे तुम्हें उस ब्रह्म का सुखपूर्वक ज्ञान हो । हे गौतम ? देह वियोग मरण को प्राप्त करके जीव जिस प्रकार से होता है अर्थात् परमात्मज्ञान के अभाव होने से जिस जिस योनि को प्राप्त करता है उस वस्तु का भी मैं कथन करता हूँ । हे गौतम ? एतादृश सम्बोधन से यह द्योतित होता है कि नचिकेता के ऊपर में यमराज की बहुत बडी कृपा है । अतः एतादृश उपदेश की प्रतिज्ञा कर रहे हैं ॥६॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयान्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ।७।

परब्रह्म श्रीरामतत्त्व से रहित कईएक शरीरधारी जीववर्ग जिसका जैसा कर्म है उसके अनुसार एवं जैसा और जिसप्रकार से सुना है उसीके अनुसार दूसरा शरीर धारण हेतु स्वकर्मानुसार ब्राह्मण क्षत्रिय आदि योनियों को प्राप्त करते हैं दूसरे हल्के कर्मवाले कितने ही जीव मृत्यु के वाद वृक्ष आदि योनि को प्राप्त होते हैं ।।७।।

सनातनब्रह्मप्रवचनं पूर्वं प्रतिज्ञातं मरणानन्तरजीवस्थितिवचनन्तु पश्चात् तथापि ब्रह्मविषये वक्तव्यस्य बहुत्वादत्र चाल्पत्वात् सूचीकटाहन्यायेन पूर्वं मरणानन्तरभवामज्ञानिजीवगतिमेवाहानेनमन्त्रेण-योनि-मित्यादिना । **अन्ये ब्रह्मज्ञानरहिताः कतिचनजीवाः शरीरत्वाय ब्राह्मणादिशरीरपरिग्रहाय पूर्वकर्मानुसाराद् योनिं मनुष्यादियोनिं प्रपद्यन्ते शुक्रशोणितयोगेन योनिं प्रविशन्तीयर्थः । अन्ये तु ततोऽप्यतिपापशीलाः ते यथाकर्म पूर्वकृतस्वकर्मानुसारेण येन यादृशं कर्म कृतं तदनुसारेणेत्यर्थः । यथाश्रुतं श्रुतं श्रावणं ज्ञानमिति यावत् । अनतिक्रम्य यथाश्रुतं येन यादृशं ज्ञानमर्जितं तदनुसारेणेत्यर्थः । स्थाणुं वृक्षादिस्थावरभावमनुसंयान्ति मरणानन्तरं प्राप्नुवन्ति अत्यन्ताधमाः स्थावरभावं तत उत्कृष्टाः पशुपक्ष्यादियोनिं तत उत्कृष्टा**

मनुष्यादियोनिं प्राप्नुवन्ति मरणानन्तरमित्यर्थः ॥७॥

सनातन ब्रह्म का प्रतिवचन कथन पूर्व प्रतिज्ञात है और मरण के अनन्तर जीव की स्थिति का कथन पश्चात् कालिक है तो प्रथमतः ब्रह्म का कथन करना चाहिये मरणोत्तर कालिक जीव स्थिति का कथन तदनन्तर होना चाहिये इसमें व्यत्यास नहीं होना चाहिये, तथापि ब्रह्मविषयक वक्तव्य अधिक है और मरणोत्तर कालिक जीव स्थिति का वर्णन अलग है तो सूचीकठाहन्याय से प्रथमतः मरणोत्तर कालिक जीव गति का ही कथन इस मन्त्र से करते हैं-**'योनिमन्ये'** इत्यादि। ब्रह्मज्ञान रहित कतिपय व्यक्ति शरीर ब्राह्मणादि शरीर की प्राप्ति करने के लिये पूर्व कर्म के बल से योनि मनुष्यादि योनि को प्राप्त करता है शुक्र शोणित के योग से योनि में प्रवेश करते हैं। अन्य कोई व्यक्ति तो पूर्वयोनि की अपेक्षा से अधिक पापशील पुरुष यथाकर्म अर्थात् पूर्वकृत कर्म के बल से अर्थात् जिसने जैसा कर्म किया है तादृश कर्म के बल से तथा यथाश्रुत जिसे यादृशज्ञान है तादृश ज्ञान के बल से श्रुत ज्ञान उसे अतिक्रमण नहीं करके यथाश्रुत जिसने यादृश ज्ञान का अर्जन किया है तादृश ज्ञान के अनुसार स्थाणु को प्राप्त करता है अर्थात् वृक्षादि स्थावरभाव को जाता है अर्थात् मरण के अनन्तर स्थावर

भाव को प्राप्त करता है। अत्यन्त अधम जीव मरणोत्तर काल में स्थावरभाव को प्राप्त करता है। और उससे उत्कृष्ट जो जीव वह पशु योनि को मरणोत्तरकाल में प्राप्त करता है। उससे भी जो उत्कृष्ट जीव है वह मरणोत्तरकाल में ब्राह्मणादि मनुष्य योनि को प्राप्त करता है। एवं अत्यन्त उत्तम देवादि योनि को प्राप्त करता है मरणोत्तरकाल में ॥७॥

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृत मुच्यते। तस्मिल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन एतद्वैतत् ॥८॥

जो यह प्रसिद्ध सर्वान्तर्यामी परपुरुष ब्रह्मतत्त्व श्रीरामजी हैं वह जीववर्गों के शयनावस्था में अनेक प्रकारक संकल्पादि की निर्माण करता हुआ जागता है वही किसी प्रकार की व्याधी रहित अमृत तत्त्व कहा जाता है उसी परब्रह्म श्रीरामजी में सभी लोक आश्रित हैं कोई भी उस ब्रह्मतत्त्व श्रीरामजी का अतिक्रमण नहीं कर सकता है। प्रकृत श्रुति से प्रतिपादित वही सनातन ब्रह्म तत्त्व श्रीरामजी हैं ॥८॥

संप्रति प्रतिज्ञातं सनातनं ब्रह्मोपदिशति-यः पूर्वोपक्रान्तः पुरुषः परमात्मा सुप्तेषु स्वप्नावस्थां प्राप्तेषु सर्वेषु जीवेषु कामं कामं संकल्पं संकल्पं निर्मिमाणः स्वाप्नान् पदार्थान् रथाश्वादीन् सृजञ्जागर्ति जीववत्

स्वप्नावस्थां न प्राप्नोतीत्यर्थः । तदेव शुक्रं सर्वतः शुभ्रं प्रकाशकमिति यावत् । तद् ब्रह्म तत् स्वप्ना वस्थायामपि जाग्रद् ब्रह्म न ततोऽन्यद् ब्रह्मेत्यर्थः । तदेव अमृतं निरूपाधिकामृतत्वशालि, तेन मुक्तनित्य मुक्तानां व्यावृत्तिस्तेषां निरुपाधिकामृतत्वरहितत्वात् । यद्वा अमृतममृतवन्निरतिशयभोग्यभूतमनवधिकानन्द-रूपत्वादुच्यते कथ्यते सर्वेषु शास्त्रेषु । तस्मिन् परमपुरुषे संकल्पमात्रेण स्वाप्नवस्तुसर्जके सर्वे लोकाः पृथिव्यादयः श्रिताः कृताश्रयाः सन्तः तिष्ठन्ति तस्य सर्वलोककारणत्वात् । तदु तत् सर्वात्मभूतं ब्रह्म उ एव कश्चन कोऽपि नात्येति नातिक्रामति । ब्रह्मा-तिक्रम्य न कोऽपि लोको वर्तते कारणातिक्रमेण कार्या णामवस्थित्यदर्शनादितिभावः ॥८॥

संप्रति पूर्व प्रतिज्ञात जो सनातन ब्रह्म है उसका उपदेश करते हैं-**'य एष'** इत्यादि । जो पूर्व प्रक्रान्त पुरुष परमात्मा है । वह सुप्त में अर्थात् स्वप्नावस्था को प्राप्त किये हुए सब जीवों में **'कामं कामं'** संकल्प का निर्माण करता रहता है स्वाप्निक जो रथादिक पदार्थ हैं उनका सृजित करता हुआ जागता रहता है नतु जीव की तरह स्वाप्नावस्था को प्राप्त करता है । वही शुक्र है सर्वापेक्षया शुभ्र अर्थात् प्रकाशक है । वह ब्रह्म है

स्वप्नावस्था में भी जागने वाला ब्रह्म है उससे अतिरिक्त ब्रह्म नहीं है। वही ब्रह्म अमृत है अर्थात् निरुपाधिक अमृतवाला है। इससे मुक्त तथा नित्यमुक्त जीव की व्यावृत्ति होती है क्योंकि इन जीवों में निरूपाधिक अमृतत्व नहीं है निरूपाधिक अमृतत्व तो परमपुरुष श्रीरामजी में ही है। यद्वा अमृत अर्थात् अमृत की तरह निरतिशय भोग्यरूप है निरवधिक आनन्दरूप होने से ऐसा सर्व शास्त्रों में कहा गया है। **'तस्मिन्नित्यादि'** उस परमपुरुष में जो कि संकल्प मात्र से स्वाप्निक समस्त पदार्थ को बनाने वाला है तादृश परमपुरुष में सब पृथिव्यादिक लोक आश्रित हैं अर्थात् ब्रह्म को आश्रित हो करके स्थित हैं क्योंकि परमात्मा समस्त पदार्थ जात का कारण है। उस सर्वात्मभूत ब्रह्म का कोई भी व्यक्ति अतिक्रमण नहीं करता है। ब्रह्म को अतिक्रमण कोई भी नहीं करता है क्योंकि कारण का अतिक्रमण करके कार्य का अवस्थान कभी नहीं हो सकता है ॥८॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥९॥

जिसप्रकार एक ही अग्नि त्रिवृत् करण यानी मिश्रीकरण प्रक्रिया के द्वारा सर्वभूतों में प्रविष्ट होकर सभी भूतवर्गों के रूपों में उन्हींके

समान रूप-रंग वाला हो गया है उसी प्रकार से एक ही सभी भूतवर्गों की अन्तरात्मा परब्रह्म श्रीरामजी विविध प्रकार के भूतवर्गों में उन्हींके समान रंग-रूप वाले के रूपमें अन्तःप्रतीत हो रहे हैं एवं उन्हीं के बाहर भी व्याप्त हैं ॥९॥

एवं प्रतिपादिताऽपि परमात्मनः सर्वात्मता दुर्विज्ञानतया वह्निदृष्टान्तेन दृढीकर्तुमाह-अग्निर्यथेति । यथाऽग्निस्तेजः पदार्थ एकोऽपि भुवनं भुवनान्तर्गतपञ्चीकृतभूतभौतिकपदार्थजातं काष्ठादिप्रविष्टः पञ्चीकरणरीत्या काष्ठादिसकलपदार्थान्तर्गतः सन् रूपं रूपं वीप्सायां द्विवचनं रूपपदञ्च भौतिकपदार्थाकारपरम्-प्रतिभौतिकपदार्थमित्यर्थः, प्रतिरूपः प्रतिगतं व्याप्तं रूपं यस्य स प्रतिरूपः सर्वत्र व्याप्तस्वरूपः प्रतिरूपः काष्ठादिरूपसदृशरूपश्च बभूव काष्ठाद्यन्तर्गतो वह्निस्तत्र प्रदीप्तो यदा भवति तदा बहिरपि काष्ठाकारसमानाकारः कौटिल्यार्जवादिविशिष्टो भवत्यन्तर्वहिश्च दारुव्याप्तो भवतीतियावत् । तथैव सर्वभूतान्तरात्मा सर्वेषां भूतानामभ्यन्तरात्मा प्रतिवस्त्वन्तर्यामिरूपेणावस्थितः परमात्मा रूपं रूपमिति पूर्ववदर्थः प्रतिरूपः प्रत्युक्तान्तर्यामिस्वरूपोऽपि देवमनुष्यादिसरूप इव भवति । बहिश्चाकाशवत् सर्वरूपेषु व्याप्तोऽपि । 'अन्तर्बहिश्च भूतानां व्याप्य नारायणः स्थितः' इति

स्मृतिसमर्थितश्चायमर्थः ॥९॥

इसप्रकार परमात्मा की सर्वात्मता का प्रतिपादन किया गया, परन्तु अत्यन्त दुर्विज्ञेय होने के कारण वह्नि दृष्टान्त से दृढ करने के लिये कहते हैं-'**अग्निर्यथैक**' इत्यादि। जिस तरह तैजस पदार्थ अग्नि एक होने पर भी '**भुवनम्**' भुवन के अन्तर्वर्ती पंचीकृत भूत भौतिक काष्ठादि पदार्थ में प्रविष्ट होकर पंचीकरण प्रकार से काष्ठादि सकल पदार्थ के अन्तर्गत होकर '**रूपं रूपम्**' यहां वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन है। और रूप पद भौतिक पदार्थों का आकार परक है अर्थात् प्रत्येक भौतिक पदार्थ को। '**प्रतिरूपः**' इति। प्रतिगत है अर्थात् व्याप्त है रूप स्वरूप जिसका उसे प्रतिरूप कहते हैं। अर्थात् सर्वत्र व्याप्त रूपवाला अर्थात् काष्ठादि के रूप के सदृशरूप वाला होता है। काष्ठ के अन्तर्गत वह्नि जब काष्ठादिक पदार्थ में प्रदीप्त होता है तब वह्नि भी काष्ठ के आकार के समान आकार वाला हो जाता है। काष्ठ में जैसे ऋजुता कुटिलता है तादृश ऋजुतादि से विशिष्ट वह्नि भी हो जाता है अर्थात् बाहर भीतर काष्ठ में व्याप्त हो जाता है। उसी तरह सभी भूत प्राणियों की आत्मा प्रत्येक वस्तु में अन्तर्यामी रूपसे अवस्थित परमात्मा श्रीरामजी भी देवमनुष्यादि के रूप के समान हो जाते हैं। वह्नि

आकाश के समान सर्वभूत व्याप्त है। 'नारायण भगवान् अन्दर बाहर सबभूतों को व्याप्त कर अवस्थित रहते हैं' इत्यादि स्मृत्यादिक से पूर्वमन्त्रार्थ समर्थित है व्याख्यात यानी विशदीकृत ॥९॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥१०॥

जिसप्रकार एक ही वायु सब भुवनों में प्रतिष्ठ होकर नाना रूपों में उनके समान ही रंग रूप वाला हुआ उसीप्रकार सभी भूतों के अन्तरात्मा श्री रामजी विविध प्रकार के रूपों में भी उन्हीं के समान रंग-रूप वाले आन्त रिक स्वरूप से दिखाई देते हैं तो बाहर भी उन्हीं के समान दृश्यमान हैं।१०।

बाह्यापेक्षया सूक्ष्मेण वायुरूपेण दृष्टान्तेन तदेव स र्वान्तरात्मत्वं परमात्मनः पुनर्दृढयति। व्याख्यानन्तु पूर्व वत्। पञ्चीकरणप्रक्रियया वायोर्वह्नावपि प्रविष्टत्वेन व ह्यापेक्षयाऽस्य दृष्टान्तस्य सूक्ष्मत्वमिति ध्येयम्। यथा वा युः भुवनान्तर्गतसर्ववस्तु अन्तर्वहिश्च व्याप्य तिष्ठति परमा त्माऽपि अन्तर्वहिश्च सर्ववस्तुषु व्याप्यवर्तत इतिभावः१०

वह्नि की अपेक्षया सूक्ष्म वायुरूप दृष्टान्त से परमात्मा की सर्वान्तरता को पुनः दृढ करने के लिये कहते हैं। इस मन्त्र का अर्थ पूर्व मन्त्रार्थ के समान ही करना चाहिये, अर्थात् जिस तरह एक ही वायु

पृथिव्यादिक पदार्थ में प्रविष्ट होता हुआ तत्तत्पदार्थ के समान् रूपवाला हो जाता है उसी तरह सब भूतों की अन्तरात्मा परमात्मा श्रीराम तत्तत्प्राणियों में अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट हो करके देवमनुष्यादि के सरूप हो जाते हैं। पंचीकरण प्रक्रिया से वायु के वह्नि में भी प्रविष्ट होने से वह्नि दृष्टान्त की अपेक्षा से वायुरूप दृष्टान्त में सूक्ष्मता है ऐसा समझना चाहिये। जिस तरह से वायु भुवनान्तर्गत सभी वस्तुओं को अन्तर तथा बाहर से व्याप्त करके रहता है उसी तरह परमात्मा श्रीरामजी भी सब पदार्थ को व्याप्त करके विद्यमान हैं ॥१०॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैः बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥११॥

जैसे सभी लोकस्थ प्राणियों के चक्षुरूप सूर्यदेव नेत्र के अन्दर रहते हुये भी चक्षु सम्बन्धी बाहरी मलों से लिप्त नहीं होता है वैसे ही बाह्य-सभी पदार्थों से भिन्न कमल पत्र के समान पानी से निर्लिप्त अद्वितीय सभी भूतवर्गों के अन्तरात्मा होकर भी परब्रह्म श्रीराम तत्त्व अन्य लोगों के दुःखों से लिप्त नहीं होता है ॥११॥

परमात्मनः सर्वत्रान्तर्वहिश्च वर्तित्वे जीवात्मन इव तस्यापि सुखदुःखादिप्रसक्तिः कथं नेति शंकां दृष्टान्त द्वाराऽपाकरोति-सूर्य इति **सूर्यः आदित्यः सर्वलोकस्य**

सर्वश्चासौ लोको जीवजातमित्यर्थः, तस्य चक्षुश्चक्षु रिन्द्रियाधिष्ठाता 'आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशदि' त्यादिश्रुतिभिः सूर्यस्य चक्षुरन्तर्गततयाधिष्ठातृत्वाव गमात् । चाक्षुषैश्चक्षुःसम्बन्धिभिर्बाह्यदोषैर्वहिर्भवा बाह्या दोषाः काचकामलयो मलादयश्च तैश्चक्षुष उपरिभागे वर्तमानैरपि दोषैरेतैर्यथा न लिप्यते न स्पृश्यते तथा सर्वभूतान्तरात्मा सर्वेषां भूतानामात्म भूतः सर्वान्तर्गतोऽपि एक एव भूतगतैर्दोषैर्न लिप्यते । एतेन भूतान्तर्गतजीवानां भूतदोषलेपसत्वेऽप्यस्यैकस्यैव न लेप इति जीववैलक्षण्यं द्योतितं भवति, भूतगतवि कारेऽपि न लेप इति जडवैलक्षण्यमपि द्योतितं भव ति। कुतो न लिप्यत इत्यत्र हेतुमाह-लोकदुःखेन बाह्यः। लोकस्य जीवजातस्य दुःखं कर्माधीनं भ वत्यस्य तु न तदकर्मवश्यत्वादतो लोकदुःखेन बाह्यो बहिर्भूतः स्वाभाविकापहतपाप्मत्वादितया विलक्षण इतियावत् । यद्वा लोकदुःखेन न लिप्यते यतो बाह्यः स्वेतरससमस्तविलक्षण इत्यर्थः कार्यः । तस्मान्न जी वात्मन इव सुखदुःखप्रसंगोऽत्र भवतीतिभावः ॥११॥

यदि परमात्मा सर्वत्र बाह्याभ्यन्तर रूपसे विद्यमान है तब तो जीवात्मा के समान परमात्मा को भी दुःखादि की प्राप्ति होनी चाहिये । इस शंका का दृष्टान्त द्वारा

निराकरण करने के लिये कहते हैं-'**सूर्यो यथेत्यादि**' जिस तरह सूर्य आदित्य सभी जीव समुदाय के चक्षु हैं अर्थात् चक्षुरिन्द्रिय के अधिष्ठाता हैं। 'आदित्य चक्षु स्वरूप हो करके अक्षि में प्रविष्ट हुए' इत्यादि श्रुति से ज्ञात होता है कि सूर्य के चक्षु के अन्तर्गत होने से चक्षु के अधिष्ठाता हैं। यह आदित्य चाक्षुष अर्थात् चक्षु सम्बन्धी बाह्य दोष कांच कामला और मलादिक से ये सब चक्षु के ऊपर भाग में वर्तमान दोष से जिसप्रकार सूर्य लिप्त नहीं होते हैं अर्थात् इन सब दोषों से सूर्य को किसी भी प्रकार से स्पर्श नहीं होता है। उसी तरह सभी भूतों की अन्तरात्मा सभी भूतों का आत्मस्वरूप परमात्मा श्रीरामजी के सबके अन्तर्गत होने पर भी भूत सम्बन्धी दोषों से लिप्त नहीं होते हैं। इससे भूत के अन्तर्गत जीव को भूत सम्बन्धी दोष जनित लेप होने पर भी इस एक परमात्मा को तादृश दोष जनित लेप नहीं होता है यह स्पष्ट हुआ। इसलिये जीव से वैल क्षण्य परमात्मा में बतलाया जाता है। तथा भूतगत जो विकार उससे भी परमात्मा को लेप नहीं होता है। इस जड वर्ग से भी वैलक्षण्य परमात्मा में द्योतित होता है। परमात्मा में तादृश दोष जनित लेप क्यों नहीं होता है इस शंका के उत्तर में कहते है-'**लोकदुःखेन बाह्यः**'

इति। लोक जीव समुदाय को जो दुःख होता है वह कर्माधीन दुःख होता है किन्तु परमात्मा को दुःख इसलिये नहीं होता है कि यह परमात्मा कर्मपराधीन नहीं है। इसलिये परमात्मा लोक दुःख से बाहर है स्वकीय अपहतपाप्मत्वादि गुण से युक्त होने से अत्यन्त विलक्षण है इसलिये परमात्मा को कर्मलेप नहीं होता है। अथवा लोक दुःख से परमात्मा लिप्त नहीं होते हैं क्योंकि ये बाह्य हैं स्वेतर समस्त पदार्थों से विलक्षण हैं, ऐसा अर्थ करना चाहिये। इसलिये जीवात्मा के सदृश परमात्मा श्रीरामजी में सुखदुःख का सम्बन्ध नहीं होता है ॥११॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं बीजं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥

अपने समान या अधिक से रहित एक अद्वितीय सब संसार को अपने अधीन रखने वाला समस्त भूतवर्गों का अन्तर्यामी, जो परब्रह्म श्रीरामजी हैं वे नाम तथा रूप के विभाग रहित एकाकार तम स्वरूप बीज को महत्तत्व आदि के रूप में बहुत प्रकार से विभाग करते हैं उस अपने भीतर स्थित परब्रह्म श्रीरामतत्त्व को जो धीर साधकजन सर्वदा देखते हैं उन्हीं धीरजनों को शाश्वत सुख सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है अन्य जनों को नहीं ॥१२॥

यतोऽयं न लोकदुःखसंस्पृष्टस्तस्मादेतद्विज्ञा-नाच्छाश्वतसुखप्राप्तिरितिदर्शयति। योऽयं परमात्मा स

एक समाभ्यधिकद्वितीयरहितः 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' इतिश्रुतिप्रसिद्धश्चास्य स्वसमाभ्यधिकद्विती यराहित्यरूपमेकत्वम् । वशी, वशी वशीभूतः स्वाधीन इतियावत् । समस्तः प्रपञ्चोऽस्यास्तीति वशी, यद धीनं समस्तं चिदचिदात्मकञ्जगत् तादृश इत्यर्थः । तत्र हेतुमाह-सर्वभूतात्मरात्मा सर्वेषां भूतानां चिदचिद्रूपा णामन्तरात्मा अन्तर्गतः सन्नियन्तेत्यर्थः । सर्वान्तर्या मित्वादेव जगदस्य वशेऽस्तीतिभावः । अयमेव हि सर्वस्य कारणमित्यपि दर्शयितुमाह-एकं बीजं बहुधा यः करोति । यः परमात्मैकं स्वेनाविभागदशां गतमत एकमित्युच्यते बीजं कारणं प्रधानं बहुधा महदादिवि कारस्वरूपेणानेकं करोति, अविभागदशापन्नतयैकीभूत मपि प्रधानं यो नानाकारेण करोति स्वसंकल्पमात्रेणेति भावः । तं परमात्मनम् । आत्मस्थम् 'य आत्म-नितिष्ठन्नि' त्यादिश्रुत्यनुसारेण जीवान्तर्गतं ये धीरा बुद्धिमन्तः । अनुपश्यन्ति श्रवणानन्तरं साक्षात्कुर्वन्ति तेषां धीराणामेव शाश्वतं शाश्वद्ध्रुवं सदातनमिति या वत्, सुखं भवति मुक्तिर्भवितीत्यर्थः । य आत्मस्थं परमात्मानं न साक्षात्कुर्वन्ति तेषां साक्षात्कारविहीना नान्तु शाश्वतसुखं नास्त्येव । बाह्यविषयेष्वासक्तबुद्धयः स्वात्मस्थमपि परमात्मानं न पश्यन्ति अतः तेषां कृते

अशाश्वतरूपा दुःखसंभिन्ना संसृतिरेवास्तीतिभावः १२

जिसलिये यह परमात्मा लोक दुःख से संस्पृष्ट नहीं होते हैं अत एव एतादृश परमात्मा का ज्ञान से जीव को शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है इस बात को बतलाते हैं- **'एको वशीत्यादि'** जो यह परमात्मा हैं जिसके ज्ञान से शाश्वत सुख प्राप्त होता है वह परमात्मा एक है स्व सदृश स्वाधिक द्वितीय से रहित है । अर्थात् इस परमात्मा के समान अथवा इससे अधिक कोई नहीं है । 'परमेश्वर के समान तथा परमेश्वर से अधिक कोई नहीं है' इत्यादि श्रुति प्रसिद्ध स्व समान तथा स्वाभ्यधिक द्वितीय रहितत्व रूप एकत्व परमेश्वर में है । **'वशीति'** वह परमात्मा वशी अर्थात् स्वाधीन हैं पराधीन नहीं हैं । समस्त प्रपञ्च है जिसे उसे वशी कहते हैं । अर्थात् जिसके अधीन में समस्त चिदचिदात्मक जगत है एतादृश यह परमात्मा हैं । समस्त परमात्मा के अधीन में है इसमें कारण बतलाते हैं-**'सर्वभूतान्तरात्मेति'** जिस लिये स्थावरजङ्गमात्मक सकलभूत अन्तर्गत होता हुआ सबका नियन्ता है । अर्थात् सर्वान्तर्यामी होने से सम्पूर्ण जगत् इसके वश में है । यही परमात्मा सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं इस विषय को भी बतलाते हैं-**'एकं बीजं बहुधा यः करोतीति'** जो परमात्मा एक अर्थात्

स्वयमेव अविभागावस्था में एकत्व को प्राप्त कर जाते हैं इसलिये एक कहे जाते हैं । बीज कारण प्रधान को बहुधा अर्थात् महदादि विकाररूप से अनेक कर देते हैं अर्थात् अविभाग दशापन्न एकीभूत प्रधान को जो स्वकीय संकल्पमात्र से नाना अनेक प्रकार बना देते हैं । उस परमात्मा को आत्मा जीव में संस्थित 'जो आत्मा में रहता है' इत्यादि श्रुति के अनुसार जीव के अन्तर्गत उस परमात्मा को जो धीर बुद्धिमान् उपासक देखता है अर्थात् श्रवण के अनन्तर साक्षात्कार करता है उन धीर पुरुषों को शाश्वत सनातन अर्थात् नित्य सुख सायुज्य मोक्ष प्राप्त होता है । जो व्यक्ति जीव में संस्थित परमात्मा श्रीरामजी का साक्षात्कार नहीं करता है उसे शाश्वत सुख की प्राप्ति नहीं होती है । बाह्य विषयों में आसक्त बुद्धि वाले पुरुष स्वात्मा में सर्वदा अवस्थित परमात्मा को नहीं देखता है उसे तो दुःख मिलित संसार सुख ही प्राप्त होता है ॥१२॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेकोबहूनां यो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥१३॥

जो नित्य चेतन एवं अद्वितीय परब्रह्म है वह नित्य एवं चेतन अनेक जीवों के कामनाओं को पूर्ण कर देता है उस अन्तर्यामी परब्रह्म

श्रीरामजी का जो धीर साधक साक्षात्कार करलेते हैं उन्हीं साधक धीर व्यक्तियों को शाश्वतिक शान्ति मिलती है अन्यों को नहीं ॥१३॥

नित्योऽविनाशी, एकः स्वसमाभ्यधिकरहितश्चेत नश्चैतन्यविशिष्टो यः परमात्मा बहूनामितरेषां नानाभूता नां चेतनानां जीवानां कामान् तत्तत्कर्मानुगुणभोग्य पदार्थान् विदधाति उपस्थापयति, तं परमात्मान मात्मस्थं स्वस्मिन्नन्तर्यामितया वर्तमानं ये धीरा बुद्धिमन्त उपासनद्वारा अनुपश्यन्ति साक्षात्कुर्वन्ति तेषामेव कृतसाक्षात्काराणां शाश्वती शान्तिरात्यन्ति कदुःखनिवृत्तिरूपा भवति । नेतरेषामकृतपरमात्मद र्शनानां विषयाशावशीकृतमानसानां तु न सा शान्तिः किन्तु संसारानुवृत्तिरेव भवतीत्यर्थः ॥१३॥

'**नित्योनित्यानामीत्यादि**' समस्त जगत् के कारण जो परमात्मा वह नित्य हैं अर्थात् अविनाशी उत्पाद विनाशरहित हैं। एक हैं स्व के समान तथा स्व से अधिक जो उससे अर्थात् परमेश्वर के समान तथा परमेश्वर से अधिक कोई नहीं है तथा चेतनाचेतन धर्म से युक्त परमात्मा जो हैं वह अनेक स्वेतर अनेक जीवों के काम को तत्तत् जीवकृत कर्म के अनुसार भोग्य पदार्थ को देते हैं। '**तं परमात्मानम्**' परमात्मा को अपने में अन्तर्यामी रूपसे वर्तमान परमात्मा का जो धीर बुद्धिमान् पुरुष उपासना द्वारा साक्षात्कार कर

लेता है उसी व्यक्ति को जिसने परमात्मा श्रीरामजी का साक्षात्कार करलिया है उसे शाश्वतिक शान्ति आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति लक्षण शान्ति प्राप्त होती है। और जिसने परमात्मा का साक्षात्कार नहीं किया है जिसका मन विषय विषयक आशा से वशीकृत है उसे शाश्वतिक शान्ति नहीं मिलती है अपितु संसार का ही अनुवर्तन होता रहता है ॥१३॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा १४

हे गुरुदेव ? वह पूर्व वर्णित यह अनिर्देश्य परम सुख है ऐसा आपने कहा तो उस परब्रह्म श्रीरामतत्त्व को मैं बालक कैसे समझ पाऊं ? क्या वह ब्रह्मतत्त्व स्वयं प्रकाशरूप है अथवा अन्यों से प्रकाशित है ? ॥१४॥

एवं यमेनोक्तं परमात्मस्वरूपं श्रुत्वा तत्साक्षात्कारोऽस्मादृशां संभवति न वेति शंकते-तत् यत् साक्षात्कारात् शाश्वतसुखप्राप्तिरभिहिता भगवता तदेव पूर्वमुक्तम्। परमं निरतिशयं सुखं यस्मिन्ननुभूते सर्वसुखानुभवो भवति तत् परममितिभावः। अनिर्देश्यमिदमिति निर्देशानर्हं तथापि एतत् करतलगतामलकवत् प्रत्यक्षमिति मन्यन्ते भवादृशा योगिनोऽहं तु न परिकलितयोगोऽतः तदनिर्देश्यं परमं सुखं ब्रह्म कथन्नु विजानीयां केन प्रकारेण साक्षात्कर्तुं शक्नुयां रूपादिरहिततया मादृशजनग्रहणानर्हत्वात् तद् ब्रह्म भाति किमु।

सामान्यतया प्रकाशते किं येन मादृशोऽपि ज्ञातुं प्रभवेदिति तर्क उपपद्येत । अथवा तद् ब्रह्म विभाति विशेषेण भासते येन स्पष्टतया मादृशोऽपि विशेषेण साक्षात्कर्तुं पारयेदित्यर्थः । वा शब्दः विकल्पार्थकस्तेन न विभाति न विशेषतो भासत इत्यर्थो लभ्यते । अतो विशेषरूपेण भासते न वेति प्रश्नो निस्सरतीत्यर्थः १४

उक्त प्रकार से यमराज द्वारा कथित परमात्मस्वरूप का श्रवण करके एतादृश परमात्मस्वरूप का साक्षात्कार मादृश व्यक्ति को हो सकता है अथवा नहीं हो सकता है इस आशय से शंका करता है-'**तदेतदित्यादि**' जिस परमात्मा श्रीरामजी के साक्षात्कार होने से शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है ऐसा जो आपने अभी कहा है वही वस्तु पूर्व में कहे हैं वह परम नित्य निरतिशय सुख जिसका अनुभव होने से होता है वह परम सुख है । वह परमसुख '**अ निर्देश्यमिति**' अनिर्देश्य है कथन करने के योग्य यद्यपि नहीं है तथापि इसे आपके सदृश योगी लोग हस्तामलक के समान प्रत्यक्ष ही मानते हैं । मैंने तो योग का अभ्यास नहीं किया है अतः निर्देशानर्ह परमसुख लक्षण ब्रह्म को किस प्रकार से साक्षात्कार करने में समर्थ मैं हो सकता हूँ, क्योंकि परमसुखात्मक ब्रह्मरूप स्पर्शादि रहित होने से मेरे सदृश व्यक्ति से ग्रहण के योग्य नहीं हैं । वह ब्रह्म क्या भासित होता है ? सामान्य रूपसे क्या प्रकाशित होते

हैं ? जिससे मेरे सदृश व्यक्ति भी जानने में समर्थ हो सकता है । अथवा तादृश निरतिशय सुखात्मक ब्रह्म विशेष रूपसे भासित होते हैं जिससे मेरे सदृश भी व्यक्ति विशेष रूपसे साक्षात्कार करने में समर्थ हो सकेगा । प्रकृत में वा शब्द विकल्पार्थक है । इसलिये-'**न विभाति**' का विशेष रूपसे नहीं भासित होते हैं ब्रह्म यह अर्थ लब्ध होता है । अत: विशेष रूपसे भासित होते हैं ब्रह्म अथवा विशेष रूपसे भासित नहीं होते हैं एतादृश प्रश्न फलित होता है ॥१४॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युत: कुतोऽयमग्नि: । तमेव भान्तनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१५॥

उस परब्रह्म श्रीरामजी में सूर्य प्रकाशित नहीं होता है चन्द्रमा एवं तारागण भी प्रकाशित नहीं होते हैं तथा ये विजलियां भी प्रकाशित नहीं होती हैं तो यह सामान्य अग्नि कैसे प्रकाशित हो सकती है कारण कि उस परब्रह्म श्रीरामजी के भासित होने पर ही सब सूर्य आदि प्रकाशित होते हैं एवं उसी ब्रह्मतत्त्व श्रीरामजी के प्रकाश से यह परिदृश्यमान सर्वसंसार पूर्ण रूपसे प्रकाशित होता है ॥१५॥

卐 इतिलघुदीपिकायां द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयावल्ली 卐

तत्र परब्रह्मणि भासमाने सति सूर्यो न भाति सूर्य प्रकाशापेक्षया परब्रह्मप्रकाशस्य अतिशयितत्वादभि भूतप्रकाशो भवति सूर्योऽतो न भातीत्यर्थ: । न चन्द्र तारकम् चन्द्रश्च तारकाश्च चन्द्रतारकं समाहारद्वन्द्वे नपुं

सकत्वमेकवचनञ्च । चन्द्रस्य तारकाणाञ्च प्रकाशोऽपि अभिभूतो भवति । दृष्टं हि लोके समुत्कृष्टप्रकाशवत्सान्निध्येऽपकृष्टप्रकाशवतो दीपस्याप्रकाशमानताऽतः चन्द्रतारकमपि न प्रकाशते ब्रह्मणि प्रकाशमान इत्यर्थः । नेमा विद्युत इमा विशिष्टदीप्तिमत्तया दृश्यमाना विद्युतोऽपि न प्रकाशन्ते तस्मिन् प्रकाशमाने तासामपि तत्तेजोऽभिभवादेवेत्यर्थः । अयमग्निरल्पीयोदीप्तिमत्तयाऽस्माभिरनुभूयमानस्तु कुतो भायात् । ब्रह्मणि भासमाने नैव कथमपि भायादित्यर्थः । तमेव परमात्मानमेव सर्वान्तर्वर्नर्तिनं भान्तं भासमानमनु पश्चाद् भाति प्रकाशते सर्वं सूर्यादिकम् तस्यैव ब्रह्मण एव भासा याचितमण्डनन्यायेन ब्रह्मणः सकाशात् प्राप्तब्रह्मसम्बन्धिन्या भासा दीप्त्या सर्वमिदं सूर्यचन्द्रादिकं विभाति विस्पृष्टं प्रकाशते । यद्वा तस्यैव भासा सूर्यादिगतया सर्वमिदं जगद् घटपटादिकं भाति प्रकाशितशरीरंभवति । सूर्यादिषु वर्तमाना दीप्तिस्तेषां स्वकीया न किन्तु परमात्मदत्तैव तया च सूर्यादय इदं सर्वं प्रकाशयन्तीत्यर्थः । एतेन परमात्मनः प्रकाशाश्रयत्व प्रतिपादनाद् रूपादिमत्वं स्पष्टीकृतम् 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' श्वे. ३।८ इत्यादिश्रुतिषु तु प्रसिद्धमेव अतो रूपादिविहीनत्वान्मादृशजनग्रहणानर्हमिति

शंका न कार्या त्वया । रूपादिविशिष्टश्च परमात्मा भाति विभाति च, अतो विभाति न वेति संशयोऽपि न कार्य इत्येवं शिष्यप्रश्नस्योत्तरं दत्तं यमेनेतिभावः। परमात्मनः रूपवत्त्वे समुपबृंहणमाचार्यवचनमपि उदाहार्यं तद्यथाह च जगद्गुरुश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यः श्रीरामप्राप्तिपद्धतौ श्लो. ३८-३९

अधःस्थिते वितानस्य तत्र सिंहासने वरे ।
आसीनं परमं रम्यं श्रीरामं सीतया सह ॥
दिव्यायुधान्वितञ्चाथ दिव्यपार्षदसंयुतम् ।
दिव्यभूषणवस्त्रञ्च भूषितं वीक्षते ह्यसौ ॥१५॥

卐 इति भगवद्रामानन्दाचार्यप्रणीतेकठोपनिषद आनन्दभाष्ये द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयावल्ली ॥२।२॥ 卐

'न तत्र सूर्यः' इत्यादि । सर्वप्रकाशक उस परमात्मा श्रीरामजी के प्रकाशित होने से उसका प्रकाशक सूर्य नहीं होते हैं । सूर्य के प्रकाश की अपेक्षा से परब्रह्म का जो प्रकाश हैं वह अति अधिक है इसलिये ब्रह्म प्रकाश से सूर्य का प्रकाश अभिभूत हो जाता है । इसलिये परमात्मा में सूर्य प्रकाशक नहीं होता है । **'न चन्द्र तारकमिति' 'चन्द्रश्च तारकञ्चेति चन्द्रतारकम्'** इस प्रकार यहां समाहार द्वन्द्व समास होने से नपुंसक तथा एकत्व है । ब्रह्म प्रकाश से चन्द्रमा तथा तारा का प्रकाश

अभिभूत हो जाता है। लोक में भी देखने में आता है कि अत्युत्कृष्ट प्रकाश के समीप में अर्थात् सूर्यादि प्रकाश में अपकृष्ट प्रकाशवान् प्रदीपादिक़ का प्रकाश नहीं होता है। इसलिये परब्रह्म के प्रकाशित होने से चन्द्रमा तथा तारागण प्रकाशित नहीं होते हैं अर्थात् इनके प्रकाश से ब्रह्म प्रकाशित नहीं होते हैं। **'नेमाविदुत'** इति। ये विशिष्ट प्रभायुक्ततया दृश्यमान विजलियां से भी ब्रह्म प्रकाशित नहीं होते हैं। ये बिजलियां भी ब्रह्म प्रकाश से अभिभूत हो जाती हैं। **'कुतोयमग्निरिति'** और अत्यल्प प्रकाशरूप से परिदृश्य मान भूमि सम्बन्धी अग्नि तो कहां से प्रकाशित हो सकती है। अर्थात् ब्रह्म के प्रकाशमान होने से अग्नि भासित नहीं होती है। क्निु **'तमेवभान्तमिति'** किन्तु सबके अभ्यन्तर में वर्तमान उस परमात्मा श्रीरामजी के भासमान होने से तत्पश्चात् ये सब सूर्यादिक प्रकाशित होते हैं। **'तस्य'** उस ब्रह्म के प्रकाश से याचित मण्डनन्याय से ब्रह्म सम्बन्धी प्रकाश से ये सब सूर्य चन्द्रादिक विस्पष्टरूप से प्रकाशित होते हैं। यद्वा सूर्य में विद्यमान ब्रह्म के प्रकाश से संपूर्ण घटपटादिक जगत् प्रकाशित होता है। अर्थात् सूर्यादिक में वर्तमान जो प्रकाश है वह सूर्यादिक का स्वकीय प्रकाश नहीं है किन्तु परमात्मा से दिया हुआ

प्रकाश है उस ब्रह्म प्रदत्त प्रकाश से सूर्यादिक संपूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं । एतावता ब्रह्म में प्रकाशाश्रयत्व के प्रतिपादन करने से ब्रह्म में रूपादिक है इसका स्पष्टीकरण किया गया । और **'आदित्यवर्णं तमसः'** इत्यादि श्रुति में तो ब्रह्म में रूपादिमत्व तो अति प्रसिद्ध ही है । अतः परमात्मा के रूपादि रहित होने से हमारे सदृश व्यक्ति से ग्रहण योग्य नहीं है, इसप्रकार की शंका नहीं करनी चाहिये । रूपादि विशिष्ट परमात्मा सामान्य रूपसे तथा विशिष्ट रूपसे भासित होते हैं । इसलिये परमात्मा भासित होते हैं अथवा नहीं भासित होते हैं ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये । ऐसा उत्तर यमराज ने शिष्य को दिया । सर्वेश्वर श्रीसीतानाथजी रूपादिमान् हैं इसमें उपोद्बलक वचन जगद्गुरु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी ने श्रीरामप्राप्तिपद्धति में कहा है उसका भी उदाहरण देखना चाहिये । **'अधः स्थिते'** इत्यादि । दिव्य आयुध से युक्त तथा दिव्य पार्षदों से समन्वित और दिव्य भूषण वस्त्रादि से युक्त श्रीसीताजी सहित भगवान् श्रीरामजी वितान चमवा के मध्य में परमसिंहासन पर बैठे हुए लोगों से देखे जाते हैं ॥१५॥

इत्यानन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्यप्रकाशे
द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयावल्ली

##卐 अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयावल्ली 卐

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदुनात्येति कश्चन ॥ एतद्वैतत् ॥१॥

ऊपर सातों लोको की ओर मूल तथा नीचे पृथिवी आदि तरफ शाखा वाला यह सनातन संसार स्वरूप अश्वत्थ-पीपल का झाड है वही प्रकाशमय परतत्त्व है एवं वही सभी जगह व्याप्त परब्रह्म तत्त्व श्रीराम है और वही दोष रहित अमृत है ऐसा शास्त्रों में निरूपित है। उसी परब्रह्म श्रीराम में सभी लोक आश्रित हैं कोई भी भूतवर्ग उस परब्रह्म का अतिक्रमण नहीं कर सकता है। प्रकृत श्रुति से प्रतिपादित यह पीपलरूप संसार वृक्ष ब्रह्मात्मक है ॥१॥

ऊर्ध्वमूल ऊर्ध्वं सकललोकोपरिवर्तमाने सत्यलोके प्रतिष्ठितत्वाद्धिरण्यगर्भ एवोर्ध्वभूतस्तदेवमूलमादित्वादितरप्रपञ्चस्य प्रथमावयवो यस्य संसाररूपस्याश्वत्थस्य स ऊर्ध्वमूलो हिरण्यगर्भात्मकमूलावयवोऽवाच्योऽधोगताः पृथिव्यादिलोकप्रतिष्ठिता मनुष्यपशुपक्षिस्थावरात्मिकाः शाखाः शाखाख्यावयवाः सोऽवाक्शाखः प्रसृतत्वसाम्यान्मनुष्यपश्वादिषु शाखात्वोपचार एष दृश्यमानः सनातनोऽनादित्वाच्चि

रकालीनः प्रवाहरूपेणायातीति सनातन उच्यते नत्वविनाश्यश्वत्थो वृक्षविशेषः श्वस्तिष्ठतीतिश्वत्थः स न भवतीत्यश्वत्थः श्वो विनाशीत्यपरोऽर्थो द्योत्यते तेन संसाराश्वत्थस्य श्वो विनाशिता प्रतिपादिता भवति। अयञ्चाश्वत्थो यतः परमकारणादभिन्ननिमित्तोपादान रूपाद् भवति तदेव शुक्रं विशुद्धं तद् ब्रह्म संसाराश्वत्थकारणमेव ब्रह्म तदेवाश्वत्थकारणममृतं निरुपाधिकामृतत्ववन्निरतिशयभोग्यं वोच्यते बोध्यते शास्त्रैः। तस्मिन्नेव परब्रह्मणि सर्वे लोकाः श्रिताः प्रतिष्ठिता भवन्ति उत्पत्यादिसमयेषु तदु तद् ब्रह्म कश्चन कोपि नात्येति नातिक्रामति एतद्वैतत् एतदेव संसाराश्वत्थनिदानमेव तत् पूर्वोक्तं विष्णोः परमं पदमित्यर्थः ॥१॥

'**ऊर्ध्वमूल इत्यादि**' ऊपर है मूल जिसके ऊर्ध्व अर्थात् सकल लोक से ऊपर में वर्तमान जो सत्यलोक तादृश सत्यलोक में प्रतिष्ठित होने से हिरण्यगर्भ ही ऊर्ध्व में अवस्थित हैं तादृश हिरण्यगर्भ ही मूल हैं सर्वप्रपञ्च के आदि हैं अर्थात् प्रथमावयव जिस संसार रूप अश्वत्थ का उसे ऊर्ध्वमूल कहते हैं हिरण्यगर्भरूप मूलात्मक अवयव वाला। '**अवाक् शाखः**' अधोलोक अर्थात् पृथिवी लोक में प्रतिष्ठित रहने वाला मनुष्य

पशुपक्षी स्थावरात्मक शाखा शाखात्मक अवयव जिसका उसे अवाक् शाख कहते हैं। प्रसृतत्व धर्म जिस प्रकार शाखा में है उसी तरह मनुष्य पशु प्रभृतिक में भी है इसलिये मनुष्यादिक में शाखात्व का उपचार है। यह दृश्यमान प्रत्यक्षादि प्रमाणों से। सनातन अनादि होने से चिरकालिक प्रवाहरूप से आ रहा है इसलिये सनातन यह संसारवृक्ष है नतु परमात्मा की तरह सर्वदा स्थायी है अश्वत्थ वृक्ष विशेष। श्वः द्वितीय दिन तक रहे उसे श्वत्थ कहते हैं और जो ऐसा न हो उसे अश्वत्थ कहते हैं। कल विनाश होनेवाला यह दूसरा अर्थ द्योतित होता है। इससे संसाररूप अश्वत्थ का श्वः पर दिन में विनाशित्व का प्रतिपादन होता है। एतादृश संसाररूप अश्वत्थ अभिन्न निमित्तोपादान लक्षण जिस परम कारण से समुत्पन्न होता है वही परमकारण शुक्र अतिशयेन विशुद्ध है वह ब्रह्म है अर्थात् संसाररूप अश्वत्थ का जो कारण वही ब्रह्म है। तथा अश्वत्थ कारण ब्रह्म अमृत हैं निरूपाधिक अमृत के समान निरतिशय भोग्य कहलाते हैं इसी रूपसे शास्त्र से बोधित भी होते हैं। उसी संसारणीभूत ब्रह्म में सभी लोक प्रतिष्ठित रहते हैं उत्पत्ति स्थिति प्रलय काल में। एतादृश ब्रह्म का कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता है। यही संसाररूप अश्वत्थ

का जो निदान कारण है वही पूर्वप्रतिपादित परम विष्णु श्रीरामजी का परमपद है ॥१॥

यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् । महद्भयं बज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२॥

संसार के प्राणस्वरूप परब्रह्म श्रीरामजी से निःसृत एवं प्राणस्वरूप परमात्मा में अवस्थित परिदृश्यमान यह जो कुछ भी जगत है वह महाभयरूप परब्रह्म से हाथ में उठाये बज्र के समान कंपित होता है जो साधक ऐसे परमात्म तत्त्व श्रीरामजी को जानते हैं वे जीव अमृत-जन्म-मृत्यु से रहित हो जाते हैं ॥२॥

इदं परिदृश्यमानं यत् किञ्च यत्किञ्चिदग्निवाय्वादित्यादिकं जगत् तत्सर्वं समस्तमेव जगत् निःसृतं प्राणादुत्पद्यमानं प्राण एवाभिन्ननिमित्तोपादानभूते परब्रह्मणि एजति कम्पते चलति प्राणपदवाच्यपरब्रह्मण एव निर्गतं तत्रैव स्वस्वव्यापारं कुरुत इत्येतत् । एतस्य जगत उत्पत्यादिकारणं तद् ब्रह्म महद् भयं बिभेत्यस्माज्जगदिति भयं भयजनकमित्यर्थः । तत्र हेतुमाह-बज्रमुद्यतम् । उद्यतं प्रहर्तुं सज्जीकृतं बज्रमेव तत् कश्चित् प्रहर्तुकामः स्वकरे वज्रमुद्यतं कुरुते तद्वा उद्यतं बज्रं यथा महद् भयजनकं तथा प्राणपदवाच्यं ज-

गत्कारणं ब्रह्मापि महद्भयजनकमतस्तच्छाशनानुवर्तिनो भूत्वा वाय्वादयो नियमेन स्वस्वव्यापारपरा भवन्तीत्यर्थः । ये जना एतत् प्राणशब्दवाच्यमप्रमादेन स्वस्वव्यापारे प्रवर्तनाय जगतो भयजनकं ब्रह्म विदुर्जानन्ति तेऽमृता भवन्ति संसारान्मुच्यन्ते ॥२॥

'**यदिदं किञ्चेत्यादि**' यह परिदृश्यमान जो कुछ जगत् है अग्नि वायु आदित्य प्रभृतिक जो कुछ यह जायमान पदार्थ समुदाय हैं वे सब के सब जगत् निःसृत प्राण से उत्पद्यमान हैं वे प्राण में अभिन्न निमित्तोपादान परब्रह्म में कंपित चलित होते हैं । अर्थात् प्राण पदवाच्य परब्रह्म से ही निर्गत हैं, उस ब्रह्म की सत्ता में ही स्वकीय स्वकीय व्यापार करते हैं । इस जगत् के उत्पत्यादि के कारणीभूत जो ब्रह्म हैं वह महान् भयरूप हैं । डरें जिससे उसे भय कहते हैं । ब्रह्म की भय जनकता में हेतु बतलाते हैं '**बज्रमुद्यतमिति**' उद्यत प्रहार करने के लिये सज्जीकृत बज्र के समान । जिस तरह कोई प्रहार करने की इच्छा से अपने हाथ में उद्यत करे तव उद्यत वज्र जिसप्रकार भय का जनक होता है उसी तरह प्राण पदवाच्य जगत् का कारण ब्रह्म भी महान् भय का जनक है । अतः तादृश ब्रह्म की आज्ञा में स्थित

होकर अग्नि वायु प्रभृति देव अपने अपने व्यापार में नियमित रूपसे संलग्न रहते हैं । जो पुरुष प्राण शब्द वाच्य ब्रह्म को प्रमाद रहित हो करके स्वकीय व्यापार में प्रवृत्ति के लिये जगत् के भयजनक ब्रह्म को जानते हैं, वे तादृश ब्रह्म ज्ञानवान् पुरुष अमृतत्व को प्राप्त करते हैं अर्थात् संसार बन्धन से विमुक्त हो जाते हैं ॥२॥

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।

भयादिन्द्रश्च प्राणश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥३॥

इस ब्रह्मतत्त्व के भय से अग्नि तप्त होता है यानी जलाती है एवं इसी परब्रह्म श्रीरामजी के भय से सूर्य तपित होता है अर्थात् गर्मी प्रदान करता है तथा ईश्वर के भय से ही इन्द्र स्वर्ग का प्रशाशन करता है और वायु भी परब्रह्म के भय से ही प्रवाहित होता है तथैव ब्रह्मतत्त्व के भय से ही पांचवां मृत्युदेव भी स्वकार्य सम्पादन हेतु दौडता है ॥३॥

पूर्वोक्तमेव विवृणुते, अस्य परब्रह्मणो भयात् तदुत्पादितभीत्या अग्निस्तपति दाहजनको भवति । अस्य भयात्सूर्यस्तपति प्रकाशते । अस्य भयादिन्द्रश्च वायुश्च पञ्चमो मृत्युश्च धावति स्वस्वव्यापारपरो भवति । इन्द्रवह्निसूर्यादीनामपि नियता स्वव्यापारप्रवृत्तिः परमात्मशासनातिक्रमे भयादेवधावतीतिभावः ॥३॥

पूर्वकथित भयजनकत्वरूप अर्थ का ही स्पष्टीकरण

करते हैं '**भयादस्याग्निस्तपतीत्यादि**' इस ब्रह्म के भय से अर्थात् ब्रह्म श्रीरामजी से उत्पादित भय के कारण से ही अग्निदेव प्रमाद रहित हो करके दाह पाक और प्रकाश रूप कार्य करते हैं। इसी ब्रह्म के भय से सूर्य भी नियमित रूपसे अतन्द्रित हो करके प्रकाशरूप कार्य करते रहते हैं। उसी ब्रह्म के भय से इन्द्र यथा समय वृष्टि लक्षण कार्य करते हैं तथा वायु भी उसी के भय से यथा समय में स्वकीय कार्य करते हैं और ब्रह्म के भय से यह पञ्चम मृत्यु भी दौडती है अर्थात् स्वकीय व्यापार में सर्वथा सर्वदा प्रवृत्त रहती है। परमात्मा के शासन का अतिक्रमण करने से बहुत बडा भय होगा इस कारण से वायु सूर्यादि देवों की भी स्वकीय कार्य विषय में नियमतः प्रवृत्ति रहती है ॥३॥

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः। ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥४॥

साधक स्व शरीर के पतन से पूर्व ही इसी लोक में ब्रह्म श्रीराम तत्त्व ज्ञान हेतु सक्षम हुआ तो युक्त-अच्छा है नहीं तो उस ब्रह्मतत्त्व ज्ञान के न होने से सर्ग-जहां प्राणिवर्ग की सृष्टि होती है ऐसे लोकों में अन्य अनेक शरीर धारण हेतु कल्पित नियत होता है अर्थात् नाना

योनी प्राप्त कर लेता है ॥४॥

इह अस्मिल्लोके शरीरस्य शीर्यमाणस्वभावस्य देहस्य विस्त्रसः पतनात् प्राक् पूर्वमेव जीवनकाल एवेत्येतद् । ब्रह्म बोद्धुं ज्ञातुं साक्षात्कर्तुमित्येतदश कदशक्नोत् चेद् यदि तदा संसारान्मुक्तो भवति । अ शकदित्यत्र छान्दसः शप् भाव्यन्तु श्नुनेति बोध्यम् । न चेद् ब्रह्म बोद्धुमशकत् ततः तस्मादज्ञानादेव हेतोः सर्गेषु प्राणिसर्जनाधारेषु लोकेषु पृथिव्यादिषु शरी रत्वाय शरीरभावाय नरपशुपक्षिप्रभृतिशरीरग्रहणाय कल्पते तद्योग्यो भवति तस्मात् शरीरपातात्पूर्वमेव परमात्मज्ञानाय यतेतान्यथा जन्मजरामरणादिरूपः सं-सारावश्यंभावीतिभावः ॥४॥

'इह चेदित्यादि' इस मनुष्य लोक में शरीर मरण स्वभाव वाला इस देह के पतन (मरण) के पूर्वकाल में अर्थात् जीवन काल में ही यदि ब्रह्म श्रीरामजी का साक्षात्कार करने में समर्थ हुआ तब तो संसार सागर से विमुक्त हो गया अशक् यहां पर छान्दस शप् हुआ है ऐसा जानना । यदि ब्रह्म को समझने में समर्थ नहीं हुआ तब विमुक्ति का कारण ब्रह्मज्ञान के अभाव होने से प्राणियों के सर्जन के आधार भूत पृथिव्यादिक लोक में शरीरभाव अर्थात् मनुष्य पशुपक्षी प्रभृतिक शरीर ग्रहण

करने के लिये कल्पित होता है अर्थात् तद् योग्य होता है अर्थात् ब्रह्मज्ञान के अभाव में पुनः पुनः जन्म का ही ग्रहण करते हैं। इसलिये शरीर के पतन से पहले ही परतत्त्व मात्मज्ञान के लिये साधक को प्रयत्न करना चाहिये। अन्यथा जन्म मरणादि रूप संसार अवश्यंभावी है ॥४॥

यथाऽऽदर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके। यथाऽप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥५॥

प्रकाश के अभाव में जैसे दर्पण में स्पष्ट प्रतिविम्ब नहीं दिखाई देता है वैसे ही श्रीरामशरणागति स्वीकारे बिना अपने शरीर के अन्दर स्थित परब्रह्म श्रीरामजी का दर्शन नहीं हो सकता है। एवं जैसे स्वप्न में देखा पदार्थ संशय रहित स्पष्ट नहीं होता वैसे ही पितृलोक में ईश्वर का स्वरूप स्पष्ट अवगत नहीं होता ज्यों जल का पदार्थ स्पष्ट न दीखकर चारों ओर फैले हुये के समान दिखाई देता है वैसे ही गन्धर्वलोक में ईश्वर का स्वरूप दीखता धूप एवं छाया किसी स्थिति होने पर वहां स्थित पदार्थ जैसे स्पष्ट नहीं दिखाई देता है वैसे ही ब्रह्मलोक में भी स्थूल वस्तुओं के जैसा ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता है ॥५॥

ननु कथमिहैव ब्रह्मज्ञानाय यत्न आस्थेयोऽन्यत्रापि देवादिलोके कृते यत्ने यदि परमात्मतत्वं विज्ञायेत स्यादेव मुक्तिर्यतः परमात्मसाक्षात्कारस्यमुक्तिहेतुता न

लोकविशेषनियन्त्रितेत्याशंकायामाह-यथादर्श इति । इहलोके शरीरापतात् प्रागेव यत्नाधाने तु कारणमिद मेव यदिहलोके जायमानं परमात्मज्ञानं यथा विश दतरं भवति तथा नान्यलोकेष्विति तदेव दर्शयंति-यथा आदर्शे तथात्मनि, आदर्शे दर्पणाख्यस्वच्छकाच विशेषे प्रतिबिम्बं मुखादि यथा सुविशदमलोक्यते तथैव । आत्मनि सुसंस्कृते मनसि परमात्मतत्त्वं सुवि शदमुपलभ्यतेऽत्र लोके यदि तद् आस्थीयते उपास नारूपः । लोकान्तरे तु न तथेत्याह-यथा स्वप्ने तथा पितृलोके । स्वप्नेस्वप्नदशायां यद् वस्तु प्रतीयते तच्च न सुविशदं स्वप्नप्रतीतेर्जाग्रत्प्रतीतिवत् संशयादिनिवर्त कत्वाभावात्, अतः स्वाप्नप्रत्ययो न स्फुटावभासो यथा तथैव पितृलोके जायमानपरमात्मप्रत्ययोऽपि न स्फुटावभासः । तत्र चेतसः कर्मफलभोगासक्तत्वाद् यतो हि स भोगभूमिलोकः । एवं गन्धर्वलोकेऽपि न स्फुटमवलोकयितुं शक्यते परमात्मतत्त्वमित्याह-यथाऽप्सु इति । अप्सु जलेषु स्वच्छेष्वपि यथा परिददृश इव परिदृष्टमिव भवति वस्तु तदन्तर्गतं वस्तुतो स्थले इव स्पष्टं परिदृष्टं भवति तथा गन्धर्व लोके ज्ञायमानमपि परमात्मतत्त्व न स्पष्टं दृष्टं भवति तत्रापि चेतसो भोगाऽऽसक्तत्वादतो गन्धर्वलोकेऽपीह

लोके इव स्फुटावभासोऽशक्य एव परमात्मनः । ब्रह्म लोके कीदृशं परमात्मदर्शनं भवतीत्याह-छायातपयोरिव **ब्रह्मलोके हिरण्यगर्भलोके परमात्मतत्वं तदितर तत्वाद् विविच्य छायातपयोरिव परस्परमत्यन्तभिन्नं परमात्मतत्वं स्वेतरतत्वादिति ज्ञानं सुस्पष्टं भवति, यद्यपि तथापि स लोको न सुलभः । सर्वेषां येन तत्रैव गत्वा ज्ञानाय यत्नो नियम्येत, अत इहैव लोके शरीरपातात् प्राग् यतितव्यं मुमुक्षुभिरित्युपदिष्टम् ॥५॥**

इसी लोक में ब्रह्मज्ञान के लिये इतना प्रयत्न करने का आग्रह क्यों ? यतः देवादि लोक में भी यत्न करने पर यदि परमात्म तत्व ज्ञात होगा तब तो मोक्ष होगा ही। क्योंकि परमात्मज्ञान को जो मोक्ष कारणता है वह किसी लोक विशेषण से नियन्त्रित नहीं है । अर्थात् अमुक लोक में तत्वज्ञान हो तभी मोक्ष होगा और अमुक लोक में तत्वज्ञान नहीं होने पर मोक्ष नहीं होगा ऐसा तो कोई नियम विशेष नहीं है । एतादृश शंका के होने पर श्रुति कहती है-'**यथादर्शे**' इत्यादि । इस लोक में शरीर पतन से पूर्व में ही यत्न करने का कारण यही है कि इसलोक में जायमान परमात्मज्ञान जिस तरह विशदतर हो तादृश विशद परमात्मज्ञान अन्य लोक में नहीं होता है । इसी बात को बतलाते हैं-'**यथादर्शे**'

इत्यादि । जिस तरह आदर्श दर्पण में स्वच्छ काच विशेष में मुखादिक का प्रतिबिम्ब सुस्पष्ट रूपसे जाना जाता है उसी तरह आत्मा में अर्थात् श्रवण मननादि संस्कृत मन में परमात्मतत्व सुविशद रूपसे उपलब्ध होता है यदि इस लोक में उपासना रूप प्रयत्न किया जाय । मनुष्य लोक से इतर लोक में एतादृश सुविशद परमात्मज्ञान नहीं होता है इस बात को बतलाते हैं- **'यथास्वप्ने'** इति । जिसप्रकार स्वप्न में ज्ञान होता है उसी तरह पितृलोक में परमात्मज्ञान होता है अर्थात् स्वप्नकाल में जो ज्ञान होता है वह, ज्ञान सुविशद नहीं होता है क्योंकि स्वप्नकालिक ज्ञान जाग्रत कालिक ज्ञान के समान संशयादि का निवर्तक नहीं होता है, इसलिये स्वाप्नज्ञान स्फुट नहीं होता है जिस तरह उसी तरह पितृलोक में जायमान परमात्मज्ञान स्फुटावभास नहीं होता है । पितृलोक में चित्त कर्मफल के भोग में आसक्त रहता है क्योंकि वह पितृलोक भोगभूमि है । इसी तरह गन्धर्वलोक में भी स्फुटरूप से परमात्मतत्व गन्धर्वलोक में भी स्फुट रूपसे नहीं होता है इस बात को बतलाते हैं-**'यथाऽप्सु'** इत्यादि । जिस तरह अति स्वच्छ भी जल में जल के अन्तर्गत पदार्थ देखने के समान होता है किन्तु स्थल में जिस तरह सुस्पष्ट दृष्ट

होता है उस तरह से नहीं होता है। उसी तरह गन्धर्वलोक में ज्ञायमान भी परमात्म स्पष्ट रूपसे दृष्ट नहीं होता है, क्योंकि गन्धर्वलोक भी भोगभूमि है उसमें चित्तभोगासक्त रहता है अतः इसलोक के सदृश गन्धर्व लोक में स्फुटावभास परमात्मा का नहीं होता है।

ब्रह्मलोक में किस तरह से परमात्म दर्शन होता है? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**छायातप योरिवेत्यादि**' ब्रह्मलोक अर्थात् हिरण्यगर्भ लोक में परमात्मतत्व अत्यन्त विस्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है छाया तथा आतप के समान होता है। परन्तु वह ब्रह्मलोक सुलभ नहीं है सब के लिये जिससे कि सब लोग उस ब्रह्म में जा करके परमात्मज्ञान के लिये प्रयत्न कर सके। इसलिये इसलोक में ही परमात्मज्ञान के लिये शरीर पात से प्रथम में ही मुमुक्षुओं को प्रयत्न करना चाहिये। इस बात का इस श्रुति में उपदेश किया गया है ॥५॥

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्त्वा धीरो न शोचति ।६।

भिन्न भिन्न रूपों में उत्पन्न होनेवाली इन्द्रियगणों का पृथक् भाव यानी एक दूसरे से अलग कार्यपना है एवं उदय और अस्तपना है उसे इन्द्रिय सम्बन्धी मानकर धीर-देह तथा इन्द्रियों से आत्मतत्त्व को

अलग जाननेवाला तत्त्वज्ञानी शोच नहीं करता है ॥६॥

प्रकृतिविविक्तजीवात्मज्ञानानन्तरं परमात्मज्ञानस्य भावित्वाज् जीवात्मज्ञानं देहेन्द्रियविलक्षणतया कार्यं तथा करण एव परमात्मज्ञानद्वारा शोकनिवृत्तिसम्भव इत्यभिप्रायेणाह–इन्द्रियाणामिति । इन्द्रियाणामिति शरीरादेरप्युपलक्षणम् । प्रायशो लोका देहेन्द्रियाण्ये वात्मतया प्रतिपद्यमाना भवन्ति, अहंस्थूलोऽहंकृशोऽहं काणोऽहं बधिर इत्याद्यनुभवात्, परन्त्वयमनुभवः कार्य कारणरूपदेहेन्द्रियसंघाते आत्मत्वभ्रान्त्यैव भवति अतः इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां बाह्यानामान्तराणां च मन आ दीनां पृथग्भावं जीवात्मापेक्षया स्वभावविलक्षणता विभिन्नतेत्येतत् । तं देहेन्द्रियवैलक्षण्यरूपं पृथग्भावं पृथक् स्वस्वकारणादुत्पद्यमानां मत्त्वाऽत्मा भिन्नो भिन्नानि देहेन्द्रियाणि विज्ञाय धीरो बुद्धिमान् न शो चति न संसारदुःखमनुभवति । यदिति यौ इत्यर्थकम् । तथा यद् उदयास्तमयौ उत्पादविनाशौ तौ च जाग्रत् स्वापादिदशासु इन्द्रियव्यापाराणामेव भवतोऽत इन्द्रि यगतौ एव नात्मगतौ इत्येवं मत्वा धीरो न शोच तीत्यन्वयः । देहेन्द्रियगतमात्मवैलक्षण्यमात्मगतं देहेन्द्रियवैलक्षण्यं ज्ञात्वा उत्पादविनाशित्वमिन्द्रियाणा

मेव देहसहितानां नात्मन इत्येवं प्रकृतविविक्तात्मज्ञानी शोकभाग् न भवतीतिभावः ॥६॥

प्रकृति से भिन्न जीवात्मा है एतादृश प्रकृति विविक्त जीवात्मज्ञान के बाद में ही परमात्मज्ञान संभवित है। जीवात्मज्ञान देह इन्द्रिय से विलक्षणरूप से संपादनीय है। ऐसा करने पर ही परमात्मा के ज्ञान द्वारा शोक पद वाच्य संसार की निवृत्ति होगी, इस अभिप्राय से कहते हैं-'**इन्द्रियाणामित्यादि**' यहां इन्द्रिय पद का कार्य जो शरीर है उसका उपलक्षक है। प्रायः लौकिक पुरुष शरीर इन्द्रिय को ही आत्म रूपसे समझने वाले होते हैं अर्थात् देह तथा चक्षुरादिक इन्द्रिय को ही आत्मरूप से जानते हैं 'मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ, मैं काना हूँ, मैं बधिर हूँ, ऐसा ही प्रायः लोगों को अनुभव होता है। परन्तु यह अनुभव कार्य करणरूप देहेन्द्रिय समुदाय में आत्मत्व भ्रम से होता है। अतः चक्षुरादिक बाह्य इन्द्रियों में तथा आन्तर करण मन प्रभृतियों का जो पृथक् भाव अर्थात् जीवात्मा की अपेक्षा से स्वभाव विलक्षणता भिन्नता। एतादृश देहेन्द्रिय वैलक्षण्यरूप पृथक् भाव को तथा पृथक् स्वस्वकारण से उत्पद्यमान इन देहेन्द्रियादिक पृथक् भाव को जान करके आत्मा शरीरादिक से भिन्न है तथा देहेन्द्रियादिक जीवात्मा से

भिन्न है, ऐसा जान करके धीर बुद्धिमान् उपासक शोक नहीं करता है अर्थात् संसार जनित दुःख परंपरा का अनुभव नहीं करता है संसार सागर से समुत्तीर्ण हो जाता है। **'यत्'** यत् शब्द जो है वह द्विवचन यौ इस अर्थ में है। जो ये उदयास्तमय उत्पाद विनाश है वह जाग्रत् स्वापादि काल में इन्द्रिय व्यापार का ही है जाग्रत् में इन्द्रियों का व्यापार उत्पन्न होता है तथा स्वापकाल में विनष्ट हो जाता है। अतः यह उदयास्तमय इन्द्रियादिक में रहते हैं किन्तु ये उदयास्तमय जीवात्मा में रहनेवाले नहीं हैं, ऐसा जान करके धीर बुद्धिमान उपासक शोक को प्राप्त नहीं करता है, इसप्रकार अन्वय समझे। अर्थात् देहेन्द्रियगत आत्मवैलक्षण्य को तथा आत्मगत देहेन्द्रियगत वैलक्षण्य को देहादि प्रतियोगिक आत्मानुयोगिक भेद को तथा जीवात्म प्रतियोगिक देहेन्द्रियानुयोगिक भेद को जान करके उत्पाद विनाशित्व शरीर सहित इन्द्रिय में ही है किन्तु जीवात्मा में नहीं है इसप्रकार से प्रकृति विविक्त जीवात्म ज्ञानी उपासक शोक को अर्थात् शोक पदवाच्य संसार को प्राप्त नहीं करता है ॥६॥

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्वमुत्तमम्।
सत्वादधिमहानात्मा मनसोऽव्यक्तमुत्तमम् ।७।

श्रोत्र प्रभृति ज्ञानेन्द्रियों से मन पर है यानी प्रवल है मनसे बुद्धि उत्तम है बुद्धि से महान् जीवात्मा श्रेष्ठ है उस महान् जीवात्मा से भी अव्यक्त यानी आदि अवसान वाला सूक्ष्म परिणामभूत शरीर उत्तम है ।।७।।

एतदपि प्रकृतिविविक्तात्मज्ञानमिन्द्रियार्थादिपुरुष पर्यन्तवशीकारे सत्येव भवति नान्यथा अतः पूर्वोक्तं वशीकरणं पुनः पठति स्मृत्यर्थम्-इन्द्रियेभ्य**श्चक्षुरादिभ्यः परं मनो वशीकार्यतायां तच्च मनोऽर्थेभ्योऽपि परमित्युपलक्षणतो ज्ञेयम् । 'इन्द्रियेभ्यः परा अर्थाः अर्थेभ्यश्च परं मनः' इति पूर्वमुक्तत्वात् । मनसः सत्व मध्यवसायात्मकबुद्धिस्वरूपमुत्तमं प्रधानं वशीकार्यता याम् । मनसस्तु परा बुद्धिरित्युक्तेः । सत्वादध्यवसाय रूपादप्यधिकं प्रधानमित्येतत् । महानात्मा जीवात्मेत्यर्थः । महतो जीवात्मनोपेक्ष्याव्यक्तं सूक्ष्मपरि णामभूतं शरीरमुत्तमं वशीकरणे ।।७।।**

यह प्रकृति विविक्त आत्मज्ञान इन्द्रिय अर्थादि से लेकर पुरुष पर्यन्त का वशीकार होने पर ही होगा अन्यथा नहीं अतः पूर्व में कथित जो वशीकरण है उसका पुनः पठन करते हैं पूर्वोक्त वशीकरण के स्मरणार्थ **'इन्द्रियेभ्यः परमित्यादि'** इन्द्रिय जो चक्षुरादिक ज्ञान कारण तथा कर्मेन्द्रिय इन सबसे वशीकर्तव्यता में मन पर उत्कृष्ट है वह मन अर्थ जो शब्दादिक उनसे

भी पर है यह इन्द्रिय पद को उपलक्षण मान करके समझना चाहिये। 'इन्द्रिय से उत्कृष्ट अर्थ है और अर्थ से उत्कृष्ट मन है' ऐसा पहले कहा जा चुका है। **मनसः सत्वमिति** वशीकर्तव्यता में मन की अपेक्षा से सत्व अर्थात् अध्यवसाय लक्षण उत्कृष्ट प्रधान है, क्योंकि-'मन से परा बुद्धि है' ऐसा पूर्व में कहा है। अध्यवसायात्मक बुद्धि की अपेक्षा से अधिक अर्थात् प्रधान महान् जीवात्मा है और महान् जीवात्मा की अपेक्षा से अव्यक्त अर्थात् सूक्ष्मभूत का परिणाम स्वरूप शरीर वशीकर्तव्यता में उत्तम है ॥७॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वञ्च गच्छति ॥८॥

अव्यक्त से भी व्यापक अलिंग-प्राकृतिक शरीर रहित परपुरुष श्रीरामजी ही पर-सर्वश्रेष्ठ हैं उस सर्वेश्वर श्रीरामजी को जानकर ही साधक जीव जगत के बन्धन से मुक्त होता है फलतः अमृतत्व को प्राप्त करलेता है ॥८॥

अव्यक्तात् शरीरात्तु पुरुषः परमात्मा परः श्रेष्ठो वशीकृतौ, पुरुषमेव विशिनष्टि व्यापकः सकलचिद चिदन्तर्वहिस्थितोऽलिङ्गो लिङ्गागम्यः शब्दैकगम्य औप निषदः पुरुष इत्यर्थः । यं परमपुरुषं सर्वव्यापकं मत्त्वा

उपासनद्वारा साक्षात्कृत्य जन्तुर्जीवो मुच्यते सर्वबन्धन विनिर्मुक्तो भवति । अमृतत्वं स्वस्वरूपाविर्भावं मोक्ष मित्येतद् । गच्छति प्राप्नोति ॥८॥

'**अव्यक्तमित्यादि**' अव्यक्त अर्थात् शरीर से पुरुष परमात्मा पर श्रेष्ठ है वशीकर्तव्यता के प्रवाह में । उस परमपुरुष के विशेषण को बतलाते हैं-'**व्यापकः**' इति । वह परमपुरुष व्यापक है अर्थात् सकल चित् अचित् पदार्थ के अन्तः तथा बहिः स्थित हैं । तथा अलिंग है लिंगादि द्वारा जानने के अयोग्य है केवल शब्दगम्य वह औपनिषद् परपुरुष श्रीरामतत्त्व है । जिस परमपुरुष व्यापक तत्त्व श्रीरामजी को उपासकपुरुष उपासना से जान करके अर्थात् साक्षात्कार करके जन्तु जीव मुक्त होता है अर्थात् सर्वबन्धन से विमुक्त हो जाता है । तथा अमृतत्व को प्राप्त करता है । अर्थात् स्वकीय स्वरूप का आविर्भावात्मक मोक्ष को प्राप्त करता है ॥८॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा मनीषा मनसाऽभि क्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥९॥

जगत् सर्जक इस परब्रह्म श्रीरामजी का रूप ठीक तरह से दृष्टिपथ नहीं हो पाता है एवं कोई भी इस परब्रह्म को बाहरी चक्षु से

देख नहीं पाता है भक्ति युत धैर्यशाली मन से तो यथायोग्य गृहीत होता है जो साधक ऐसे परब्रह्म श्रीरामजी को जानते हैं वे अमृत-जन्म-मृत्यु से रहित हो जाते हैं ॥९॥

सम्प्रति परमपुरुषज्ञानाय साधनमुपदिशति-न संदृशे इति। अस्य परमात्मनो रूपं व्यापकीभूत-मन्तर्यामिस्वरूपं अप्राकृतविग्रहो वा संदृशे दृष्टिपथे न तिष्ठति दर्शनगोचरी न भवतीत्यर्थः। ततो हेतोः न चक्षुषापश्यति कश्चनैनम्। चक्षुषः प्राकृतत्वेन कश्चिदपि देवो मनुष्यो वा ईदृशेन परमात्मानं द्रष्टुं नार्हति तस्यान्तर्यामिस्वरूपस्य व्यापकत्वाद् विग्रहस्य चाप्राकृतत्वात्। प्राकृतमिन्द्रियमप्राकृतग्रहणाऽसमर्थं भवतीतिभावः। तदाऽस्यदर्शनसाधनं किमिति शंकाया माह-हृदेति। अत्र हृत्पदं हृदयस्थाया बुद्धेर्लक्षकं तथा च हृदा हृदयस्थया बुद्ध्या भक्तिरूपापन्नया हृदेत्यस्य विशेषणमाह-मनीषा। मन ईष्टे इति मनीट् तथा संकल्पविकल्पात्मकस्य मनसो नियमनकर्त्र्येत्यर्थः। मनसा स्वनियन्त्रकभक्तिरूपापन्नबुद्धिकृतसंस्कारेण चेतसाऽभिक्लृप्तो ग्राह्यः साक्षात्कार्यः परमपुरुषो भवतीत्यर्थः। 'मनसा तु विशुद्धेन' मनसैवेदमाप्तव्यमित्यादिश्रुतीनामिहैव स्वारस्यात्। ये एतत्परं ब्रह्म विदुरीदृशेन मनसा जानीयुस्ते उपासका अमृता भवन्ति ॥९॥

संप्रति परमपुरुष के ज्ञान के लिये साधन का उपदेश करते हैं-'**न संदृशे**' इत्यादि। इस परमात्मा का रूप व्यापकीभूत अन्तर्यामी स्वरूप अथवा अप्राकृत लोकोत्तर विग्रह **संदृशे** दृष्टिपथ में नहीं है, अर्थात् परमात्मा का रूप सकल साधारण के लिये दर्शन योग्य नहीं है। इस कारण से कोई भी व्यक्ति इस परमात्मा को चक्षुरादि के द्वारा नहीं जान सकता है। चक्षुरादिक इन्द्रिय प्रकृति से निर्मित है अतः कोई भी व्यक्ति चाहे वह देव हो मनुष्य हो वह एतादृश चक्षुरादि से परमात्मा श्रीरामजी को देखने में समर्थ नहीं होता है क्योंकि परमात्मा का अन्तर्यामी स्वरूप व्यापक है तथा भगवान् श्रीराम का स्वरूप अप्राकृतिक भी है। प्राकृतिक इन्द्रिय समुदाय अप्राकृतिक भगवान् के विग्रह को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता है। यदि भगवान् का विग्रह चक्षुरादि ग्राह्य नहीं है तब तादृश विग्रह के दर्शन का साधन क्या है इस जिज्ञासा में कहते हैं-'**हृदामनी षेत्यादि**' यहां हृदय पद हृदयस्थ बुद्धि का बोधक है। तब यह अर्थ होता है कि हृदाभक्तिरूपापन्न हृदयावस्थित बुद्धि से। हृदा इसका विशेषण बतलाते हैं-'**मनीषा**' मन का नियमन करे जो उसे मनिट् कहते हैं तादृश बुद्धि से जो कि संकल्प विकल्पात्मक मनके नियमन

करनेवाली बुद्धि के द्वारा । मन से स्वमन के नियमन करने वाली बुद्धिकृत संस्कार से अभिक्लृप्त ग्राह्य साक्षात्कार करने के योग्य परमात्मा होते हैं । **'मनसा तु विशुद्धेन' 'मनसैवेदमाप्तव्यम्'** इत्यादि श्रुतियों का इसी अर्थ में तात्पर्य है । जो उपासक इस परब्रह्मतत्त्व श्रीरामजी को एतादृश मन से जानते हैं वे उपासक अमृत हो जाते हैं अर्थात् मोक्ष को प्राप्तकर जाते हैं । इससे अन्य कोई भी उपाय ब्रह्म साक्षात्कार कराने में समर्थ नहीं हैं । अतः भक्तिरूपापन्न बुद्धि से ही परमात्मा ग्राह्य होते हैं ॥९॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम् १०

जब साधक का मन के साथ पांचों ज्ञानेन्द्रियां सुस्थिर हो जाती हैं एवं बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती है उसे परमगति कहते हैं ॥१०॥

मनसस्तादृशबुद्धिकृतः संस्कारः कदा भवतीत्य त्राह-यदा पञ्चज्ञानानि ज्ञानसाधनानीन्द्रियाणि मनसा सह ब्रह्मण्येवावतिष्ठन्ते स्थिरीभवन्ति मनसि परमात्म प्रवणे स्वस्वविषयविनिवृत्तानीन्द्रियाणि तत्रैव सह मनसा धृतानि भवन्ति बुद्धिश्चाध्यवसायलक्षणा न वि चेष्टेत व्यापाररहिताऽवतिष्ठेत् तामीदृशीं प्रसिद्धमिन्द्रिय

धारणामेव परमां गतिं गम्यतेऽनयेतिगतिर्गमनसाधनं तस्याः परमत्वं मोक्षरूपोत्कृष्टफलसाधनत्वमेव । ईदृशीन्द्रियधारणैव मोक्षसाधनमित्याहुः परमात्मतत्वविदः ॥१०॥

मनमें भक्तिरूपापन्न बुद्धि से संस्कार कब होता है इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं–'**यदापञ्चेत्यादि**' जिस समय में पांच ज्ञान अर्थात् ज्ञान का साधन इन्द्रिय मन के साथ ब्रह्म मे स्थिरीभूत हो जाते हैं । जब मन परमात्मोन्मुख होता है तब स्व स्व विषय से विनिवृत्त इन्द्रिय समुदाय मन के साथ परमात्मा में अवस्थित हो जाते हैं । अध्यवसाय लक्षणा बुद्धि जब विचेष्टित नहीं होती है अर्थात् स्वकीय व्यापार से रहित होकर के स्थिर हो जाती है । एतादृश प्रसिद्ध इन्द्रिय धारणा को परमागति कहते हैं । जाया जाय जिससे उसे गति कहते हैं अर्थात् गति का साधन । उस गति में मोक्षरूप जो उत्कृष्ट फल है उसकी साधनता ही गति में परमतत्व है । एतादृश इन्द्रिय धारणा ही मोक्ष का साधन है ऐसा परमात्म तत्व को जानने वाले महापुरुषों का कथन है ।१०।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाऽप्ययौ ११

पूर्व श्रुति में बताये उस स्थिर इन्द्रियों की धारणा स्वरूप उत्कृष्ट गति को साधक अनुभवीवर्ग योग मानते हैं। उस समय में शान्त चित्तता होती है। योग अभिलषित पथार्द का उत्पादक तथा अनभिलषित का नाशक होता है ॥११॥

तां पूर्वोक्तां स्थिरामचलामिन्द्रियाणां बाह्याना मान्तराणां च धारणां परमात्मप्रवणेन मनसा सहावस्थितिं स्वविषयव्यापारप्रतिबन्धिनीं योगं चित्तवृत्ति निरोधरूपमित्याहुर्वदन्ति योगिनः। तदा तादृशयोग काले तादृशेन्द्रियधारणावानप्रमत्तः प्रमादरहितो भवति। मनसोऽनवधानलक्षणः प्रमाद इन्द्रियधारणा रूपयोगेनैव विनश्यतीत्यर्थः। तत्र हेतुमाह–योगो हि प्रभवाऽप्ययौ, प्रकर्षेण मनसो भवो भवनं वृत्तिः परमात्मप्रवणतयाऽवस्थानं योगः, अप्यय इन्द्रियाणां बुद्धेश्च व्यापाराभावः सोऽपि योगोऽतः प्रभवाप्ययौ योगो हि प्रसिद्धौ। इन्द्रियाणां व्यापारनाशे तु प्रमादः कथं स्यादतस्तदाऽप्रमत्तो भवतीत्यर्थः। यद्वा प्रभव उत्पत्तिर्यस्यास्तीति प्रभवोऽप्ययो यस्याऽस्तीत्यप्ययः। प्रभवश्चाऽप्ययश्च प्रभवाऽप्ययौ, अर्श आद्यजन्तयोः प्रभवशब्दाऽप्ययशब्दयोर्द्वन्द्वः। तेन योगस्योत्पादापायशालित्वमुच्यते। प्रतिक्षणमुत्पादाप्ययशालिन्यपायो माभूदित्येतदर्थमवधानमावश्यकं तच्च

प्रमादे सति न सम्भवतीत्यप्रमादो योगे परमावश्यक इत्यर्थः कार्यः ॥११॥

'तामित्यादि' उस पूर्वोक्त स्थिर अचल बाह्य आन्तर इन्द्रियों की धारणा को परमात्मोन्मुख मन के साथ अवस्थान स्व स्व व्यापार के प्रतिबन्धक को योग- अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोधरूप योगी लोग कहते हैं। एतादृश योग के समय में एतादृश इन्द्रिय धारणा समय में उपासक प्रमाद रहित हो जाता है। अर्थात् मन का अनवधान लक्षण जो प्रमाद वह इन्द्रिय धारणारूप योग से विनष्ट हो जाता है। इसमें कारण का प्रदर्शन करते हैं-**'योगोहीत्यादि'** **'प्रभवाप्ययौ'** प्रकर्षरूप से जो भव होना वृत्ति परमात्मा के उन्मुखतया अवस्थान उसे योग कहते हैं और इन्द्रिय तथा बुद्धि का जो व्यापाराभाव उसे भी योग कहते हैं। **'हि'** शब्द प्रसिद्धार्थक है। इन्द्रियों का व्यापार जब नष्ट हो गया तब प्रमाद किस तरह से होगा अर्थात् प्रमाद नहीं होता है इसलिये उस समय में साधक अप्रमत्त होता है। अथवा प्रभव उत्पत्ति है जिसकी उसे प्रभव कहते हैं। अप्यय विनाश है जिसका उसे कहते हैं अप्यय **'प्रभवश्च अप्ययश्चेति प्रभवाप्ययौ'** अर्शाद्यच् करके अजन्त प्रभव तथा अप्यय शब्द का द्वन्द्व समास किया है। इससे योग में उत्पाद

विनाशशालित्व बतलाया गया है । प्रतिक्षण में उत्पाद अप्यय स्वभावक का अपायन हो इसलिये अवधान मन का आवश्यक है वह अवधान मन में प्रमाद आने पर नहीं हो सकता है अतः अप्रमाद योग में परम आवश्यक है ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥११॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥१२॥

सर्वेश्वर श्रीरामजी को वाणी से एवं मन से और चक्षु से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है । वेद शास्त्र कहता है परब्रह्म है अतः शास्त्र की सहायता बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हो सकता है ॥१२॥

अयं परमात्मा वाचोपनिषद्भिन्नया वाण्या, मनसाऽसंस्कृतेन चेतसा चक्षुषा चक्षुरिन्द्रियेण प्राकृतेन नैव प्राप्तुमुपलब्धुं शक्यश्चक्षुषेतीन्द्रियान्तरस्याप्युपलक्षणं तर्हि कोपलब्धुं योग्य इत्यत्राह–अस्तीति ब्रुवतो **ब्रह्मास्तीतिबोधयत औपनिषदाद्वाक्यादन्यत्र तद् ब्रह्म कथमुपलभ्यते न केनाऽपि प्रकारेणोपलब्धुं शक्यते तस्योपनिषत्प्रमाणैकगम्यत्वात् ब्रह्म सत्वे प्रमाणं तु शास्त्रमेव सुनिश्चितम् । तं त्वौपनिषदश्चैतच्छ्रुतिवाक्य प्रमाणत इत्याचार्योक्तेः । एतेनात्र प्रमाणमेव नास्तीति शंकाऽपाकृता भवति । यो हि श्रुतिशिरसिनैव श्रद्ध**

ध्यात् तस्यासुरप्रकृतेः परमात्मतत्वोपलब्धिर्मा भवतु वैदिकस्य तु सा स्यादवेतिभावः ॥१२॥

'**नैव वाचा**' इत्यादि । यह परमात्मा उपनिषद् भिन्न वाणी से तथा असंस्कृत मन से और प्राकृतिक चक्षुरादि इन्द्रियों से प्राप्त होने के योग्य नहीं है । यहां चक्षुपद इन्द्रियान्तर का भी उपलक्षक है । 'तब यह परमात्मा किससे प्राप्त होने के योग्य हैं' इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**अस्तीत्यादि**' ब्रह्म है इसप्रकार समझाने वाला जो उपनिषत् वाक्य तदतिरिक्त प्रमाण से ब्रह्म किसी भी प्रकार उपलब्ध नहीं हो सकते हैं । अर्थात् आगमातिरिक्त किसी भी प्रमाण से ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी उपलब्ध नहीं होते हैं परमात्मा केवल उपनिषत् प्रमाण से ही जाने जाते हैं-'**ब्रह्म सत्वे प्रमाणं तु शास्त्रमेव सुनिश्चितम् । तं त्वौपनिषदञ्चैतच्छ्रुतिवाक्यप्रमाणतः**' इसप्रकार श्रीबोधायन मतादर्श में जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी ने निरूपण किया है अतः परब्रह्म श्रीरामजी वेदप्रमाणगम्य हैं यह सुनिश्चित होता है । इससे वह परास्त हो गये जो कहते थे कि ब्रह्म का बोधक प्रमाण नहीं है । जो व्यक्ति वेदान्त में श्रद्धा नहीं करता है उस आसुर प्रकृतिक पुरुष को भले ही परमात्म तत्व की उपलब्धि न हो परन्तु वैदिक वेद प्रमाण को मानने वाले

को तो परमात्मोपलब्धि होगी ही ॥१२॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्वभावः प्रसीदति ।१३।

तत्त्व का अनुसन्धान करने वाला साधक आन्तरिक भावना से परब्रह्म है इसप्रकार निश्चयकर वह प्राप्त करने योग्य है ऐसा निश्चय करके वेदान्त वाक्यों द्वारा ईश्वर है इसप्रकार मन से निश्चय कर दोनों कारणों से उसका मनन एवं निधिध्यासन कर श्रीरामतत्त्व का साक्षात्कार समर्थ साधक प्रसन्नता प्राप्त करलेता है ॥१३॥

श्रुतिश्रद्धालुना स परमात्मा श्रुतिवाक्यात् प्रथमतोस्तीत्येव उपलब्धव्योऽस्तित्वेन रूपेण सामान्यतो निश्चेतव्यः तदनन्तरं तत्वभावेन तत्वं परब्रह्म तस्य भावोऽसाधारणो धर्मो जगत्कर्तृत्वादि सत्यं ज्ञानमनन्तमित्यत्र बोधितः सत्यत्वादिर्वा तेन रूपेणचोपलब्धव्यो ज्ञातव्यः । उभयोरस्तित्वतत्वभावयोर्मध्ये अस्तीत्येवोपलब्धस्य श्रुतिवाक्यात् प्रथमतोऽस्तित्वेन रूपेणो-पलंब्धिमत उपासकस्य तत्वभावः परमात्मनोऽसाधारणधर्मः सत्यत्वादिः प्रसीदति स्फुटमवभासते तेनासाधारणेन धर्मेण धर्मिपरमात्मस्वरूपं यथावत् प्रकाशते । धर्मस्य धर्मिसमानसंवित्संवेद्यत्वादितिभावः । यद्वा श्रुतिवाक्यतः परमस्तीत्युपलब्धव्यः । तत्वं भाव्यतेऽनेनेति तत्वभावोमनः तेनापि परमस्तीत्युपलब्ध

व्यः। उभयोरिति षष्ठीसम्बन्धसामान्ये तृतीयार्थे। तेन उभाभ्यां श्रुतिमनोभ्यां परमस्तीति उपलब्धस्य उपलब्धिमतः तत्वभावो मनः प्रसीदति निर्मलं भवति रागादिमलरहितं भवतीत्यर्थः ॥१३॥

'**अस्तीत्येवोपलब्धव्य**' इत्यादि। श्रुति में श्रद्धा रखने वाला अधिकारी उस परमात्मा को श्रुति वाक्यों से प्रथमतः अस्ति परमात्मा इस रूपसे उपलब्धव्य है अस्तिता रूपसे सामान्यतः निश्चय करें। तदनन्तर तत्वभाव से उपलब्ध करें। तत्व शब्द का अर्थ है परब्रह्म उस ब्रह्म का जो भाव असाधारण धर्म जगत् कर्तृत्वादिक। अथवा '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' इस श्रुति से बोधित जो सत्यत्वादिक धर्म एतादृश धर्म रूपसे परमात्मा ज्ञातव्य होते हैं। अस्तित्व तथा तत्वभाव इन दोनों के मध्य में श्रुति वाक्य से प्रथमतः अस्तित्व रूपसे उपलब्धिमान उपासक का तत्वभाव अर्थात् ब्रह्म का जो असाधारण धर्म सत्यत्वादिक वह स्फुट रूपसे अवभासित होता है। उस असाधारण धर्मों से धर्मी जो परमात्मस्वरूप वह यथावत् प्रकाशित होता है। क्योंकि धर्म का ज्ञान धर्मी द्वारा ही होता है। यद्वा श्रुति वाक्यों से-'**अस्ति**' इस रूपसे ही परमात्मा श्रीरामजी उपलब्धव्य हैं। तत्वभावित हो जिसके द्वारा उसे तत्वभाव कहते हैं

अर्थात् मन उस मन के द्वारा भी परमात्मा हैं ऐसा जानना चाहिये । '**उभयोः**' यहां तृतीया विभक्ति के अर्थ में सम्बन्ध सामान्य में षष्ठी विभक्ति है । अतः यह अर्थ होता है कि श्रुति तथा मन के द्वारा परमात्मा हैं इस प्रकार उपलब्धिमान् उपासक का तत्वभाव मनप्रसन्न होता है अर्थात् रागादि सकल मल से रहित हो जाता है यह अर्थ है ॥१३॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥१४॥

इस साधना परायण जीवात्मा के हृदय में स्थित जो कामनायें हैं वे सब जब मुक्त यानी पूर्णतः शान्त हो जाते हैं उसके वाद मरणशील साधक मनुष्य अमृत हो जाता है एवं इसी जीवन में परब्रह्म श्रीरामजी का उत्तम प्रकार से अनुभव करलेता है ॥१४॥

ब्रह्मसाक्षात्कारस्य हृदयग्रन्थिविमोकद्वाराऽमृतत्व-प्राप्तिसाधकत्वमाख्याति-यदा सर्वे इति । **अस्य उपासकस्य हृदि अन्तःकरणे श्रिता वर्तमाना अनादिकालतः प्ररूढमूला ये कामाः शब्दादिविषयकरागादयः ते सर्वे यदा तत्वसाक्षात्कारोदये प्रमुच्यन्ते विलीयन्ते अथ सर्वकामविमोकानन्तरं मर्त्य उपासको जीवोऽमृतो भवति संचितकर्मणां दग्धवीजभावादुत्तरेषां कर्म-**

णाश्लासंश्लेषात् संसारवीजरहितो भवति अत्र प्रबोधद शायामुपासनाकाले ब्रह्म परमात्मानं समश्नुते अनुभ वति । शरीरेन्द्रियादिसम्बन्धसत्वकालेऽपि जीवस्योपा सकस्य ब्रह्मानुंभवों भवतीत्यर्थः ॥१४॥

ब्रह्म साक्षात्कार को हृदय ग्रन्थि विमोचन द्वारा अमृतत्व-मोक्ष प्राप्ति में जनकता है इस बात को बतलाते हुए कहते हैं-**'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते'** इत्यादि । इस उपासक के अन्तःकरण में वर्तमान अनादि काल से प्ररूढ जो शब्दादि विषयक रागादि काम हैं वे सब ब्रह्म साक्षात्कार के उदय होने पर छुट जाता है अर्थात् विली यमान हो जाता है । अथ सर्व काम के विमोक्षणानन्तर यह मर्त्य मरणशील उपासक जीव अमृत हो जाता है । संचित कर्म दग्ध बीज के समान दग्ध हो जाता है तथा उत्तरकालिक कर्म का अश्लेष होने से यह जीव संसार बीज कर्म से रहित हो जाता है । अत्र इस ज्ञान के काल में वह जीव ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी को प्राप्त करता है अर्थात् तब उस उपासर्क को परमात्मा का अनुभव होता है । अर्थात् शरीरेन्द्रिय के सत्ताकाल में भी इस उपासक जीव को ब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर श्रीराम जी का अनुभव साक्षात्कार हो जाता है ॥१४॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥१५॥

जिस काल में साधक के हृदय में स्थित सभी ग्रन्थियां विदीर्ण हो जाते हैं तब साधक मनुष्य इस देह के रहते ही अमृत-सर्व अघ रहित हो जाने से मृत्यु रहित हो जाता है । इतना ही मानव के कर्तव्य रूपसे सनातन उपदेश देने योग्य है ॥१५॥

पूर्वमन्त्रोक्तमेवार्थं पुनर्वदन्नुपसंहरति-यदा सर्वे इति। यदा प्रबोधानन्तरमुपासकस्य हृदयस्य हृदयगताः ग्रन्थयो ग्रन्थिवद् दुःखेन मोक्तुमर्हा रागादयो देहादिष्वात्माभिमानादयश्च ते सर्वे प्रभिद्यन्ते भेदनं गच्छन्ति । विनश्यन्तीत्येतत् । अथानन्तरमेवायमुपासको मर्त्योऽमृतो भवति । सवासनक्लेशनाशे जीवस्यामृतत्वं भवतीत्यर्थः । एतावदेव अनुशासनमेतन्मात्रमेव उपदेशः कर्तव्योऽस्ति गुरुणा शिष्यस्य कृते नातोधिकं किमपि उपदेष्टव्यमस्तीतिभावः ॥१५॥

पूर्व मन्त्र में प्रतिपादित वस्तु का पुनः कथन करते हुए उपसंहार करते हैं-**'यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते'** इत्यादि । यदा जब प्रबोध के अनन्तर में इस उपासक के हृदयगत जो ग्रन्थियां हैं ग्रन्थि के समान दुःखप्रद भोक्ता का महारागादिक हैं तथा देहादिक में आत्माभिमानादिक हैं

वे सब छिन्न भिन्न हो जाते हैं अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं। इसके बाद ग्रन्थिभेदन के बाद यह मर्त्य उपासक जीव अमृत हो जाता है अर्थात् वासनासहित क्लेश के नाश हो जाने से जीव को अमृतत्व हो जाता है। एतावन्मात्र अनुशासन उपदेश है। इससे अधिक गुरु के द्वारा शिष्य के लिये उपदेष्टव्य वस्तु नहीं है ॥१५॥

शतं चैका हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६॥

साधकों के हृदय में एक सौ प्रधान नाडियां हैं उन में एक मुख्य सुषुम्ना नाडी मस्तक तक सीधी निकली हुई है उस नाडी के द्वारा ऊर्ध्वलोक श्रीसाकेतलोक को प्राप्तकर अमृतत्व-यानी जीव के निज स्वरूप प्राप्ति स्वरूप सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करलेता है। दूसरी नाडियां मृत्यु समय में साधक को अन्य योनियों की ओर आकर्षण कार्य में लग जाती हैं ॥१६॥

संप्रति मुच्यमानस्य विद्यावत उपासकस्य निष्क्रमणरीतिमुदाहरति शतं चैकेति। हृदयस्य नाड्यो हृदयदेशगता नाड्यः शतमेका च सन्ति। एकाधिकशतसंख्यावत्यः प्रधाननाड्यो हृदयप्रदेशे सन्तीत्यर्थः। तासां नाडीनां मध्ये एका नाडी मूर्धानं मस्तकं भित्त्वा अभिनिःसृता निर्गता या सुषुम्नेति ब्रह्मनाडीति

चोच्यते । तया ब्रह्मनाड्या मरणकाल ऊर्ध्वमुपरि आ यन्नागच्छन् सूर्यरश्मिद्वारा अर्चिरादिमार्गेण भगवद्धाम साकेताख्यं गत्वा अमृतत्वं स्वस्वरूपाविर्भावपूर्वक श्रीरामाख्यपरब्रह्मानुभवमेति प्राप्नोति । अन्यास्तु शत संख्याका नाड्यो विष्वङ् समन्तान्मुखनासाक्षिप्रभृति द्वारेभ्य उत्क्रमणे जीवस्य निःसरणाय भवन्ति उप-युज्यन्ते । अन्यत उत्क्रमणे च सुरनरतिर्यगादिनाना प्रकारा गतयो भवन्ति । एतादृशमुत्क्रमणमविदुष एवेति भावः ॥१६॥

संप्रति मुक्त होनेवाला विद्यावान् उपासक का शरीर से निष्क्रमण प्रकार को बतलाते हैं–'**शतं चैकेत्यादि**' हृदय के–हृदय देशगत नाडियां एक सौ एक हैं एक से अधिक सौ संख्यावाली प्रधान नाडी हृदय प्रदेश में हैं। उन नाडियों के मध्य में एक नाडी मस्तक को भेदित करके निकली हुई है जिसे सुषुम्ना नाडी ब्रह्मनाडी भी कहते हैं। उस ब्रह्मनाडी के द्वारा ऊपर जाता हुआ सूर्य किरण के द्वारा अर्चिरादि मार्ग से साकेताख्य भगवद्धाम में जा करके अमृतत्व को अर्थात् स्वस्वरूप के आविर्भावपूर्वक श्रीरामाख्य परब्रह्म को प्राप्त करता है। इससे अन्य जो नाडियां हैं जो कि सौ संख्या की हैं वे मुख नासिका नेत्रादि द्वारों से जीव के निःसरण में

उपयोगी होते हैं। इससे भिन्न स्थान से उत्क्रमण होने पर देव मनुष्य तिर्यक् प्रभृतिक अनेक प्रकारक गति होती है परन्तु यह तिर्यगादि में गमन अविद्वानों का होता है श्रीरामोपासक विवेकी का नहीं ॥१६॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः। तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण॥ तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥१७॥

सभी का अन्तः आत्माभूत परपुरुष-परब्रह्म अंगूठे जैसा परिमाण वाला है जो सर्वदा जनों के हृदय में संस्थित है। मूंज के मध्य में स्थित सींक को जैसे धीरता-कुशलता पूर्वक बाहर निकाला जाता है वैसे ही अपने शरीर से उस परब्रह्म श्रीराम तत्त्व को विचारपूर्वक पृथक् रूपसे जाने। उसी तत्त्व को शुक्र मलरहित अमृत यानी अन्य उपाधि से रहित अमृतत्व है ऐसा अनुभव करे, उसी परब्रह्म तत्त्व को प्रकाशरूप तथा अमृत तत्त्व यानी विशुद्धस्वरूप में अनुभव करे ॥१७॥

अंगुष्ठमात्रोऽगुष्ठप्रमाणोन्तरात्माऽन्तर्यामी पुरुषः परमात्मा जनानां जनिमतां लोकानां हृदये हृदयप्रदेशे सदा सर्वकाले सन्निविष्टः प्रविश्यस्थितो वर्तते तमन्तरात्मानं परमात्मानमङ्गुष्ठप्रमाणकं स्वात् स्वकीयात् स्वकर्मोपार्जिताच्छरीरात् कायात् प्रवृहेत् पृथक् कुर्याद्

विविच्य जानीयादित्येतत् । धैर्येण प्रमादरहितमनसा । तत्र दृष्टान्तमाह-मुञ्जादिवेषीकां मुंजस्तृणविशेषः तस्मात् तदन्तर्गतामिषीकामिव मुञ्जमध्यवर्तिसूक्ष्म शलाकामिवेत्यर्थः । शरीरे स्थूले वर्तमानो जीवात्मा तत्रापि सर्वान्तर्यामी परमात्मा अतः सर्वतः सूक्ष्मं परमात्मानं विविच्य प्रमादरहितचेतसा जानीयादिति भावः । तं सर्वान्तरात्मानं मुक्तं विशुद्धं निखिलहेय प्रत्यनीकं प्रकाशकममृतं निरूपाधिकामृतत्वशालिनं विद्याच्छुक्रममृतमिति । द्विरुक्तिरुपदेशसमाप्तिद्योतिका आदरातिशयद्योतिका वा बोध्या ॥१७॥

'अंगुष्ठमात्र' इत्यादि । अंगुष्ठमात्र एक अंगूठा प्रमाण वाला अन्तरात्मा सर्वान्तर्यामी पुरुष परमात्मा लोगों के हृदय प्रदेश में सदा सर्वकाल में सन्निविष्ट हृदय में प्रविष्ट हो करके सदा वर्तमान रहते हैं । उस अंगुष्ठ प्रमाणक सबके अन्तरात्मारूप परमात्मा को स्वकीय कर्म से उपार्जित शरीर से पृथक् करना अर्थात् स्व शरीर से भिन्न रूपसे जानना चाहिये । किस तरह पृथक् करके जानें तो धैर्यपूर्वक प्रमाद रहित मन से जानें, इसमें दृष्टान्त बतलाते हैं-**'मुंजादिवेत्यादि'** मूंज एक विशेष तृण का नाम है । उस मूंज में से जिस तरह मूंज के

अन्तर्गत इषिका के समान जैसे मूंज के अभ्यन्तर में अवस्थित सूक्ष्म शालाका काश पुष्प के समान इस स्थूल शरीर में वर्तमान जीवात्मा है उसमें सर्वान्तर्यामी परमात्मा विद्यमान हैं अतः सर्वापेक्षया अतिसूक्ष्म पर मात्मा को पृथक् करके प्रमाद रहित मन से जानना चाहिये । उस परमात्मा को जो कि विशुद्ध है अर्थात् हेय प्रत्यनीक प्रकाशक है अमृतत्व निरूपाधिक अमृतत्व युक्त है उनको विशुद्ध तथा अमृत रूपसे जानो । द्विर्वचन जो है वह उपदेश की समाप्ति का बोधक है । अथवा इस उपदेश में आदरातिशय का बोधक है ऐसा समझना चाहिये ॥१७॥

मृत्युप्रोक्तां नाचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् । ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद् विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ।१८।

यमराज से कथित पूर्व वर्णित उपदेश श्रवण के वाद नचिकेता कथित आत्म तत्त्व तथा सभी योग के विधि-साधना नियमों को प्राप्त अनुभवकर ब्रह्म को प्राप्तकर विशुद्ध स्वरूप और मृत्युरहित हो गया । अन्य भी कोई साधक इस अध्यात्म तत्त्व को जानता है वह भी तत्त्व साधक नचिकेता के सदृश विमुक्त हो जायगा ॥१८॥

अथ यमोपदेशानन्तरं नाचिकेतो नचिकेता एवेति

नाचिकेतो गौतमसुतो मृत्युप्रोक्तां यमेन समुपदिष्टामेतां प्रकृतामात्मविद्यां परमात्मस्वरूपबोधिकां विद्यां कृत्स्नं समग्रं योगविधिं 'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टेते' त्यत्रोपदिष्टं लब्ध्वा वरप्रदा नान्मृत्योः सकाशात्प्राप्य ब्रह्मप्राप्तः परमात्मानमुप सम्पन्नः 'परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते' इति श्रुत्यनुसारेण विरजो विमृत्युश्चाभूत् । अपहत-पाप्मत्वादिगुणाष्टकाविर्भावविशिष्टोऽभूदित्यर्थः । अन्यो अपि यः कश्चिदध्यात्मविदात्मनि शरीरे इति अध्यात्मं शरीरमध्ये वित् वेत्ति मुञ्जादिषीकामिव शरीरे वर्तमानं परमात्मानं शरीरात् पृथक्तया जानाति, यद्वा आत्मा जीवः तस्मिन्नित्यध्यात्मं जीवान्तर्वर्तिनं परमात्मानं योऽन्योपि वित् जीवात्मापेक्षया पृथग् भूतम् विविच्य जानातीत्यर्थः । सोऽपि एवमेव नचिकेता इव विरजो विमृत्युश्च भवति । आविर्भूतापहतपाप्मात्वादिगुणको भवति परं ब्रह्मोपसन्नः सन्नित्यर्थः । अनेन मन्त्रेण प्रकृ ताया आख्यायिकाया उपसंहारो विद्यास्तुतये विहित इति बोध्यम् ॥१८॥

'मृत्यु प्रोक्तामित्यादि' इसके वाद अर्थात् यमराज के अनन्तर में नाचिकेत अर्थात् नचिकेता गौतम ऋषि

का पुत्र। मृत्यु प्रोक्त यमराज के द्वारा समीचीन रूपसे उपदिष्ट परमात्मा के स्वरूप को बतलाने वाली इस प्रकृत आत्मविद्या को तथा संपूर्ण योग विधि को जो कि-'**यदा पञ्चावतिष्ठन्ते**' इत्यादि स्थल में उपदिश्यमान है उसे लाभ करके वर प्रदान देने के कारण यमराज के समीप से प्राप्त करके ब्रह्म प्राप्त अर्थात् परमात्मा को-'परज्योति' को प्राप्त करके स्वकीय रूपसे अभिनिष्पन्न होता है इस श्रुति के अनुसार हुआ, तथा विरज और विमृत्य मृत्यु रहित हुआ। अर्थात् अपहतपाप्मत्वादिक जो गुणाष्टक हैं उसके आविर्भाव से विशिष्ट हो गया। नचिकेता से भिन्न भी जो अध्यात्मवित् है वह आत्मा अर्थात् शरीर में शरीर के मध्य में मूंज से इषीका के समान शरीर में वर्तमान परमात्मा को शरीर भिन्न रूपसे जानता है। यद्वा आत्मा शब्द का अर्थ है जीव उसमें अध्यात्म अर्थात् जीव के अन्तरवर्ती परमात्मा को जीव से भिन्नरूपेण जो व्यक्त्यन्तर भी जानता है। वह व्यक्ति भी नचिकेता की तरह विरज तथा विमृत्यु हो जाता है। अर्थात् परब्रह्म को उपसन्न हो करके आविर्भूत अपहत पाप्मत्वादि गुण वाला हो जाता है। इस मन्त्र से प्रकृत जो आख्यायिका है उसका उपसंहार एवं विद्यास्तुत्यर्थ विधान किया है ऐसा जानना चाहिये ॥१८॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥१९॥

卐 ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः इतिकठोपनिषत् 卐

जगप्रसिद्ध वह परब्रह्म श्रीरामजी हम गुरु तथा शिष्य की रक्षा करें और गुरु शिष्य दोनों की साथ-साथ पालन करें एवं हम दोनों साथ-साथ सद् विद्या सामर्थ्य का उत्पादन करें तथा हम दोनों की अधीत विद्या तेज वाली या विशेष वीर्यशाली हो और हम दोनों द्वेष न करें । दैहिक दैविक एवं भौतिक तीनों ताप शान्त हों ॥१९॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीतलघुदीपिका

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

विद्योपदेशे गुरोर्विद्याग्रहणे च शिष्यस्य यः शास्त्रविहितो नियमः प्रमादतस्तदुल्लंघननिमित्तदोष प्रशमाय शान्तिपाठः क्रियते-स हेति । हेति प्रसिद्धौ । स यः प्रसिद्धोपनिषत्सु स परमात्मा नौ आवां शिष्या चार्यौ इत्येतत् । अवतु स्वस्वरूपप्रकाशद्वारा रक्षतु । ह प्रसिद्धः स परमेश्वरो नौ आवां भुनक्तु विद्याफलप्रका शनद्वारा परिपालयतु । सह सममेव आवां वीर्यं विद्या सामर्थ्यं नियमपूर्वकविद्याग्रहणप्रदानाभ्यां सम्पादयावहै

नियमोल्लंघने विद्यायाः सामर्थ्यस्य क्षतिसंभवात् । नौ आवाभ्यां यदधीतं तत् तेजस्विवीर्यवत्तरमस्तु । आ वां शिष्याचार्यौ मा विद्विषावहै-प्रमादकृतनियमोल्लंघनप्रयुक्तदोषनिमित्तकं विद्वेषं न करवाहै । यश्चाधर्मेण विब्रूते, यश्चाधर्मेण पृच्छति तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति, इतिस्मरति मनुः नियमोल्लंघनं विद्वेष फलकम् । अधर्माध्ययनाध्यापनकृतो विद्वेषो नावयोर्भवत्वित्यर्थः । शान्तिः शान्तिः शान्तिरिति त्रिवारमुक्तिः सर्वदोषप्रशमनार्था इयन्तूपतिषत्समाप्तिद्योतनार्था मङ्गलार्थावेति ॥१९॥

卐 इति भगवद्रामानन्दाचार्यकृतानन्दभाष्यभूषिता कठोपनिषत् 卐

विद्या के उपदेश करने में तथा गुरु से विद्या का ग्रहण करने में जो शिष्य के लिये शास्त्र विहित नियम है कदाचित् प्रमादादि कारण से तादृश नियम का उल्लंघन करने से जो दोष की प्राप्ति है उसका उपशमन करने के लिये शान्ति पांठ किया जाता है-'**सहनाववतु**' इत्यादि । यहां ह शब्द प्रसिद्धार्थ का द्योतक है । जो परमात्मा श्रीराम उपनिषत् में प्रसिद्ध हैं वह परमात्मा नौ अपने दोनों शिष्य तथा आचार्य की स्वरूप प्रकाशन द्वारा रक्षा करें । वह प्रसिद्ध परमेश्वर नौ-अपने दोनों शिष्याचार्य का विद्या का जो फल उसके प्रकाशन द्वारा पालन करें ।

तथा वह परमेश्वर साथ ही हम दोनों को विद्या सामर्थ्य को अर्थात् नियमपूर्वक विद्या के ग्रहण का तथा विद्या प्रदान के सामर्थ्य का संपादन करें क्योंकि नियम के उल्लंघन करने से विद्या के सामर्थ्य में क्षति की संभावना रहती है। अपने दोनों ने शिष्याचार्य ने पठन पाठन किया है वह पठन पाठन तेजस्वी वीर्यवत्तर हो। हम शिष्य तथा आचार्य परस्पर विद्वेष को प्राप्त न करें। अर्थात् प्रमाद से होनेवाला जो नियम का उल्लंघन प्रयुक्त दोष है उससे अपने दोनों में विद्वेष न हो। जो अधर्म से उपदेश देता है जो अधर्म से प्रश्न करता है उन दोनों में से अन्यतर मरता है अथवा विद्वेष को प्राप्त करता है। नियम का उल्लंघन विद्वेष कारक है ऐसा मनु ने कहा है। अर्थात् अधर्म पूर्वक अध्ययन अध्यापन जनित विद्वेष हम दोनों में नहीं हो। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः इस प्रकार से जो तीन वार कथन किया गया है वह सर्वदोष के उपशमार्थक है और उपनिषत् की समाप्ति का द्योतक भी है अथवा मङ्गलार्थक है ॥१९॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीतकठोपनिषदानन्दभाष्यस्य प्रकाशे द्वितीयाध्यायस्य तृतीयावल्ली

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐